ISSN : 2321-3922
अक्टूबर– 2020
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 6 अंक–22

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–दिसम्बर – 2020

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–6, अंक–21
अक्टूबर–दिसम्बर 2020

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी–अप्रैल– 2021 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	समकालीन हिन्दी का यथार्थ और उत्तर आधुनिकता का संदर्भ	डॉ. वरुण कुमार तिवारी	06
ग़ज़ल	ग़ज़ल	अभिनव अरुण	08
आलेख	प्रेमचंद के झूठे दावेदार	कमलकिशोर गोयनका	09
ग़ज़लें	ग़ज़लें	डॉ. अश्वघोष, खुशीलाल मंजर	11
समीक्षा	मेरे गाँव का पोखरा	डॉ. बलदेव पाण्डेय	12
कविताएं	छतरी, रोटी	संजय वर्मा 'दृष्टि', मोहनदास नैमिशराय	13
आलेख	संस्कृति और साहित्य का अन्तर्संबंध	डॉ. अमर सिंह बधान	14
आलेख	घंटी बज गई	प्रकाश कुमार अग्रवाल	15
समीक्षा	जीवन से उधार	रणजीत कुमार सिन्हा	16
ग़ज़ल	ग़ज़ल	सलिल सरोज	17
आलेख	भाषा का महत्व	आचार्य बलवन्त	18
चिन्तन	वैदिक संस्कृति की ओर हमें लौटना होगा	रंजना मिश्रा	20
आलेख	हिन्दी राष्ट्रीयता की संजीवनी है	डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'	21
आलेख	हिंदी का विकास अपना लक्ष्य	सीताराम गुप्ता	22
व्यंग्य	उनकी पहली हवाई यात्रा	वीना सिंह	23
कविताएं	रेत सी फिसलती, नियति, काल, आखिर क्यों	सरिता श्रीवास्तव, मोतीलाल दास, आलोक भारती	24
जीवनी	अश्विनी कुमार दुबे	चंद्रभान राह	25
गीत	छाटे सुख, इंसान, पराजय के बाद	महेश शर्मा,	27
आलेख	सावन के मौसम में प्रेम की अनुभूति है कजरी	कृष्ण कुमार यादव	28
कहानी	लड़की की जात	नीरजा हेमेन्द्र	30
कहानी	मनहूस साया	जयन्त	33
ग़ज़लें	ग़ज़लें	शशि आनंद 'अलबेला'	34
कहानी	फूटपाथ पर जिंदगी	रामनगीना मौर्य	35
कहानी	रुका न पंछी पिंजरे में	डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव	38
यात्रा वृत्तांत	विश्व गगन का प्यारा तारा : मॉरीशस	डॉ. पंकज साहा	40
लघुकथा	ट्रेन में नशा	केदारनाथ 'सविता'	45
लघुकथा	आधुनिकता	डॉ. अनुज प्रभात	45
आत्म कथ्य	मेरा बचपन	भगवती प्रसाद द्विवेदी	46
ग़ज़लें	ग़ज़लें	डॉ. कमलेश द्विवेदी	47
लघुकथा	लॉकडाउन	चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री	48
लघुकथा	इलायची की शादी में लौंग दीवाना	डॉ. नलिनी श्रीवास्तव	49
चिन्तन	भवानी प्रसाद मिश्र के पत्रों में	डॉ० अवधेश चन्सौलिया	51

कलम, आज उनकी जय बोल

जला अस्थियाँ बारी–बारी
चिटकाई जिनमें चिंगारी
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल

जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में एक किनारे
जल–जलाकर बुझ गए किसी दिन
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रही सौ लपट दिशाएँ
जिनके सिंहनाद से सहमी
धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल

अंधा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा
साखी है उनकी महिमा के

– रामधारी सिंह ''दिनकर''

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हमारा भारतीय समाज विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, जातियों एवं प्रांतों में विभक्त है। फिर भी उसमें उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ एक–सी ही हैं; किन्तु उसके तौर–तरीके क्षेत्र विशेष के कारण समस्याओं से उत्पन्न होने का माध्यम अलग हो सकता है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य बहुआयामी है। इसके भाव जगत् में अंतर नहीं होता, पर उस भाव को प्रकट करनेवाली लेखनी अलग–अलग होती है। प्रायः इसका स्वरूप, समाजशास्त्र, इसकी विशेषताएँ, समस्याएँ आदि का बिम्ब, प्रतिबिम्ब, मूलबिन्दुओं को हमारे साहित्य में लिये जाते हैं। भले ही इसे अनेक भाषाओं में प्रस्तुत किया जाता है; लेकिन साहित्य की एकता बनी हुई है। भाषा का संबंध मनुष्य से है। मनुष्य का संबंध उस क्षेत्र से है, जहाँ उसकी संस्कृति, समाज–विचारधारा आदि का उत्थान–विकास हुआ है। हमारा संबंध सांस्कृतिक चेतना से है। संस्कृति का स्वरूप साहित्य में पड़ा है। इसलिए हमारे साहित्य में हमारी संपूर्णता, भारतीय गौरव, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय अस्मिता की भी प्रस्तुति है। भले ही राजनीति के कारण अनेकविध–परिवर्तन करने की कोशिश की गयी हो, पर मूल आवश्यकताओं में कभी बदलाव नहीं हो पाया। भारतीयता की इसी भावना ने साहित्य को एक सूत्र में सुगठित बनाए रखा है। भाषा, भूगोल और जन की इस विविधता के बावजूद मानव मूल्यों की दृष्टि से एक वैचारिक या साहित्यिक एकता विद्यमान है, जहाँ रहन–सहन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, राजनीतिक–आर्थिक आधार में विभिन्नता होते हुए भी हमें भारतीय साहित्य पर गौरव बोध होता है। इस सामाजिक व साहित्यिक व्यवस्था सुदृढ़ करने के आदि में संत–साहित्य का भी बड़ा योगदान है, जो देश, काल, जाति, धर्म से ऊपर उठकर समाज का मार्गदर्शन किया है। अकबर के सामने तुलसी को जनता ने स्वीकार किया, राम के त्याग को आदर्श माना। साहित्य चाहे प्राचीन काल का हो, मध्यकाल का हो या आधुनिक काल का, उसमें समाज के लोगों की प्रतिध्वनि अथवा प्रतिबिम्ब अवश्य झलक आता है।

साहित्य का संबंध मानव मूल्य से है और साहित्य मूल्य की अभिव्यक्ति करता है। हिन्दी साहित्य में अनेक मूल्यों की स्थापना हमारे साहित्यकारों ने की है जो भारतीय जनमानस के जीवन को निखारने में सार्थक साबित हुए हैं चाहे वह कोई भी काल क्यों न रहा हो। यदि विचारों ने साहित्य को जन्म दिया है, तो साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की है। साहित्यकार ही समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, विषमताओं तथा असमानताओं आदि के बारे में लिखते हैं, इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का प्रयास करता है। साहित्य जनहित के लिए होता है। जब समाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्गदर्शन करता है और साहित्य जगत् में रचनाकार तभी अपना महत्त्व रखते हैं, जब वे हर काल एवं परिस्थिति में जीवन्तता से जुड़े रहते हैं, प्रासंगिक होते हैं और प्रेरणा के स्रोत बनकर दिशाबोध करते रहते हैं। साहित्य का आधार ही जीवन है और साहित्यकार समाज अथवा युग की उपेक्षा नहीं कर सकता; क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज का स्वर और संगीत होता है। साहित्य के माध्यम से हमारी संवेदना और सोच का दायरा व्यापक हो जाता है। हम समाज, राजनीति, अतीत और आस–पास के परिवेश को और अधिक बेहतर समझने योग्य हो पाते हैं। साहित्य में सत्य की साधना है, शिवत्व की कामना है और सौंदर्य की अभिव्यंजना है। शुद्ध जीवन्त एवं उत्कृष्ट साहित्य मानव एवं समाज की संवेदना और उसकी सहज वृत्तियों को युगों–युगों तक जनमानस में संचारित करता रहता है। यही वर्तमान को सामने रखकर भविष्य की रूप–रेखा तय करता है। समाज की सुषुप्त विवेक शक्ति को जागृत करता है। अपने समय के सच को उजागर कर गुणात्मक व प्रासंगिक बनाता है। ठीक उसी प्रकार सर्जक भी अपनी अनिवार्यता से इनकार नहीं कर सकता। उन्हें कुछ अधिक दूर तक देखना होगा, अधिक–से–अधिक गहराई तक जाना होगा, समय से पहले सोचना होगा, सामान्य से भिन्न या उसके प्रतिकूल अनुभव करना होगा, गति को स्पष्ट दिशा देना होगा, समाज या पाठक की अपेक्षा पर खरा उतरना होगा। क्योंकि साहित्य को हम त्रिकालदर्शी कहते हैं, मनीषी और अनागतदर्शी भी कहते हैं। साहित्यिक कर्म भी सांस्कृतिक कर्म है, साहित्य रचना भी एक प्रकार से संस्कृति की रचना है और साहित्य के सांस्कृतिक परिवेश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य किसी राजनीतिक विचारधारा का प्रचार या केवल सौंदर्य और प्रेम की साधना के लिए नहीं होता, बल्कि यह मानव–जीवन की तमाम उपलब्धियों का लिखित भंडार है, जिसे हम ज्ञान की संचित राशि का भंडार की कह सकते हैं। साहित्य आनंद प्राप्ति का एक प्रयत्न जरूर है; किन्तु यह प्रयत्न अत्यन्त सूक्ष्म, परिष्कृत और मधुर हो, क्योंकि यह मानव–जीवन दर्शन भी है। इसका लेखन सोद्देश्य कर्म है। इसमें सामाजिक मंगल की भावना भी जुड़ जाती है। हालाँकि साहित्य और राजनीति दोनों को समाज की चिंता रहती है, शोषक और शोषितों के बीच होनेवाले संघर्षों की अभिव्यक्ति अपने सामर्थ्यों के अनुकूल करते हैं तथा दोनों ही प्रगतिशील होते हैं। लेकिन साहित्य हो या राजनीति–दोनों तभी शुभ होते हैं, जब वे लोकमंगल के रास्ते पर अग्रसर होते हैं। समाज को नैराश्यपूर्ण अंधकार से निकलकर आनंद की रोशनी में नहलाते हैं।

पत्रिका 'सुसंभाव्य' तथा इसके रचनाकार अपनी संस्कृति को प्रभावित करनेवाले तूफानों, झंझावातों को अपनी पैनी दृष्टि से देखते हैं। अपनी ऊर्जा रचनाधर्मिता का सदुपयोग कर अपनी ईमानदार अभिव्यक्ति करते हैं। 'बहुजन हिताय 'तथा 'बहुजन सुखाय' का चरितार्थ करने को सदा प्रयासरत रहते हैं। यह पत्रिका आपको सादर समर्पित करते हमें अपार हर्ष हो रहा है। सधन्यवाद!

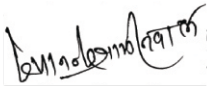

समीक्षा

समकालीन हिन्दी का यथार्थ और उत्तर आधुनिकता का संदर्भ

डॉ. वरुण कुमार तिवारी,
प्लाट न. 4/383,
(प्रथम तल) सेक्टर– 4,
वैशाली – 201010 (गाजियाबाद)

कहानी में 'समकालीनता' का क्या अर्थ है?'समकालीन कहानी की भूमिका'। पुस्तक में डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने समकालीन कहानी को 'विद्रोही कहानी' अथवा विरोध की कहानी कहा है, ''क्योंकि समकालीन सृजन मूलतः स्थापित व्यवस्था या एस्टेब्लिसमेंट का विरोधी है।'' डॉ. शिवप्रसाद सिंह, डॉ. नगेन्द्र, श्रीपत राय, डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, डॉ. गंगा प्रसाद विमल इत्यादि साहित्यकारों ने भी अपनी–अपनी तरह से 'समकालीन' की व्याख्या की है। वस्तुतः सातवें दशक के बाद जो भी कहानीकार प्रकाश में आए, सभी की चर्चा समकालीन कहानीकार के रूप में होती रही है।

हिंदी कहानी के इतिहास में समकालीन कहानी के पूर्व के कथा–आंदोलन यानी 1950 से 1965 तक के समय को 'नई कहानी की प्रतिष्ठा का समय' कहा जाता है। प्रायः 1956 ई. में भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में निकले 'कहानी' पत्रिका के विशेषांक से 'नई कहानी' का आरंभ माना जाता है। डॉ. नामवर सिंह कहानी के इस अंक को ही 'नई कहानी' की नींव डालने वाला मानते हैं। इस नववर्षांक में प्रायः सभी नए कहानीकार सम्मिलित किए गए और उनकी कहानियाँ आज भी हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ मानी जाती हैं। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश की 'मलवे का मालिक', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', मन्नू भंडारी की 'मैं हार गई', मधुकर गंगाधर की 'ढिबरी' कहानी भी 1956 में ही प्रकाशित हुईं। नामवर सिंह ने 'कहानी' पत्रिका के इसी अंक में एक जोरदार निबंध लिखा– 'आज की हिंदी कहानी'। कमलेश्वर ने 'नयी कहानी की भूमिका' (1969) में विस्तार से यह बताने की कोशिश की है कि नई कहानी का स्वरूप भी सतत परिवर्तनशील है। नई कहानी यथार्थ की तलाश करती है तथा यह अनुभव के आधार पर नई होती है। कहना नहीं होगा कि 'नई कहानी' के नामकरण और परिभाषा को लेकर 1955 से 1965 तक पर्याप्त वाद–विवाद हुआ। रजनीश कुमार ने 'हिंदी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धियाँ और सीमाएँ' पुस्तक के पृष्ठ 27 में नई
कहानी के एक सशक्त हस्ताक्षर मधुकर गंगाधर के कथन को उद्धृत किया है, ''एक छाते के तले यानी एक पत्रिका के भीतर एक संपादक भैरव प्रसाद गुप्त ने सन् 1954 से लेकर सन् 1958–59 तक के लेखकों– मार्कण्डेय, कमलेश्वर, अमरकान्त, शेखर जोशी, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, फणीश्वरनाथ रेणु, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर आदि को समेटा है। दुनिया के किसी लिटरेचर में ऐसा देखने को नहीं मिलेगा कि महज चार–पाँच वर्षों के भीतर किसी भी विधा का चाहे कहानी हो या कविता, इतना सीधा ग्राफ नहीं उठा है, जितना कि नई कहानी का ग्राफ उठा है।''
'कहानी' पत्रिका ने फरवरी, 1959 के अंक में 'आज की हिंदी कहानी' शीर्षक से एक साहित्यिक स्तंभ आरंभ किया, जिसमें नामवर सिंह, प्रकाशचंद्र गुप्त, मार्कण्डेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, शिवप्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण लाल आदि ने नई कहानी की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए अपने आलेख लिखे। नामवर सिंह की पुस्तक 'कहानी : नई कहानी' से जो आलोचना क्रम शुरू हुआ, बाद में दूधनाथ सिंह, सुरेन्द्र चौधरी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, धनंजय वर्मा, इन्द्रनाथ मदान और महीप सिंह ने उसे बहुत समृद्ध किया। 'नई कहानी' में 'परिवेश से प्रतिबद्धता', 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'भोगे हुए यथार्थ' पर जोर दिया गया। यद्यपि नई कहानी का प्रारंभ ग्राम–कथाओं से प्रारंभ हुआ, लेकिन इनमें आंचलिकता की प्रवृत्ति भी समाहित हो गई। 'एक दुनिया : समानान्तर' (1970) में राजेन्द्र यादव ने लिखा है– ''नागार्जुन और रेणु ने बिहार की 'परती' (वेस्टलेंड), 'मैला आँचल' की 'ठुमरी' गाई है। मधुकर गंगाधर ने 'तीन रंग : तेरह चित्रों' में उसकी काली–उजली शक्तिशाली तस्वीरें दी है। शानी और राजेन्द्र अवस्थी ने बस्तर के आदिवासियों की जिन्दगी को केन्द्र बनाया है। शैलेश मटियानी और पानू खोलिया ने कुमाऊँ के पहाड़ी–मोड़ों में जीवन की धूप–छाँह देखी है। मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह और अवधनारायण ने उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की प्रेमचन्दीय जमीन पकड़ी है रमेश वक्षी के पास मालवा की सांस्कृतिक सुरुचि है। कृष्णा सोबती, बलवन्त सिंह, अमृता प्रीतम ने पंजाबी किसानों और मध्यवर्गीय परिवारों की हलचल भरी जिन्दगी को उठाया है।'' परंतु 'नई कहानी' में आंचालिकता के अतिरिक्त महानगरों में व्याप्त अपरिचय का संकट, काले–धंधे, सेक्स की भूख, आत्मीयता का अभाव, रिश्तों में खटास, संवादहीनता, स्वार्थांधता आदि की भी विद्यमानता परिलक्षित होती है। कस्बाई मनोवृत्ति को अभिव्यंजित करनेवाली कहानियाँ भी 'नई कहानी' के दौर में लिखी गईं। कथ्य, शिल्प एवं भाषा के संस्कार के दृष्टि से भी नई कहानी बहुत समृद्ध हुई
है यानी हिंदी गद्य का अत्यंत श्रेष्ठ एवं प्राणवान रूप इसमें प्रस्तुत हुआ है।

बावजूद नई कहानी में ट्रीटमेंट आदर्शवाद से परिचालित था। उदाहरणस्वरूप 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर) में विषय का सुन्दर निर्वहण और कथा का कलात्मक विन्यास के बावजूद कहानी का अंत आदर्शात्मक है। 'आर्द्रा' (मोहन राकेश), 'यही सच है' (मन्नू भंडारी), 'सावित्री नम्बर दो' (धर्मवीर भारती) आदि आदर्शीकरण से परिचालित है; यद्यपि 'दोपहर का भोजन' (अमरकान्त), 'अपने देश के लोग' (कमलेश्वर) इत्यादि कहानियाँ इस दोष से मुक्त भी हैं। कई कहानियों में शीर्षक और उसकी प्रतीकात्मकता भी उनको बहुत बोझिल बना देती थी। कहानी में परोसी गई अत्यधिक काव्यात्मकता भी कहानी की संवेदना को कमजोर करती है। साथ ही 1960 के बाद कहानी परिवर्तित सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य से अपनी संगति नहीं बिठा पा रही थी। इस तरह 'नई कहानी' के अपनी ही कथा–रूढ़ियों में जड़ हो जाने पर कहानी में जो परिवर्तन आया, उसे ही 'समकालीन
कहानी' कहा जाता है।

1960 में 'सारिका' (सं. चंद्रगुप्त विद्यालंकार) का प्रारंभ हुआ। 1962 के 'सारिका' के 'नवलेखन अंक' में जो कहानियाँ प्रकाशित हुईं, उनमें नई कहानी से भिन्न प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ीं। भैरव प्रसाद गुप्त ने भी 'नयी कहानियाँ' पत्रिका में भी बदलाव का संकेत दिया। कहना नहीं होगा कि सातवें दशक के आते–आते जन–प्रतिनिधियों से जन–मानस के मोह भंग और राष्ट्रीय मूल्य के लुप्त होने के कारण निराशाजनक विषम परिस्थिति में 'नई कहानी' से इतर कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

नई कहानी के विरोध में सर्वप्रथम 'अकहानी' आंदोलन का सूत्रपात हुआ। यह फ्रांस में जन्मी 'एण्टी स्टोरी' की नकल है। इसमें अस्तित्ववादी कामू और सार्त्र का प्रभाव है यानी 'अस्वीकार का दर्शन' इसका मुख्य सरोकार रहा।

'अकहानी' के सूत्रधार डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने घोषणा की कि ''1960 के बाद कथा–रचना की ऐसी चेतना सामने आयी, जो पूर्ववर्ती रचनापीढ़ी से कई अर्थों में भिन्न है।'' परंतु सातवाँ दशक अभी खत्म भी नहीं हुआ था और न 'अकहानी' का दौर ही समाप्त हुआ कि 'सचेतन' कहानी की चर्चा शुरू हो गई। 'सचेतन' कहानी की शुरूआत 'नई कहानी'
और 'अकहानी' की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुई थी। इसके सूत्रधार स्व. डॉ. महीप सिंह हुए। डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा कि ''सचेतना का अर्थ यही है कि लेखक व्यक्ति और परिवेश की समस्त विसंगति, तनाव और जटिलता को पहचानता हुआ, भोगता हुआ उसे अर्थ देना चाहता है।'' डॉ. महीप सिंह ने 'सचेतना' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया, जो 'सचेतन' कहानी आंदोलन की प्रमुख मंच बनी। इसी बीच अमृत राय ने 'नई कहानियाँ' (1968) के संपादकीय में 'सहज कहानी' का उल्लेख किया तथा पत्रिका में इस नाम से एक स्तंभ भी प्रारंभ किया। उनका अभिमत था कि 'नई कहानी' की खोज में 'सहज कहानी' खो गई। 'सहज कहानी' वह है, जो हँसा सके, रूला सके। उसे अच्छा, प्राणवान और सशक्त होना चाहिए। लेकिन किसी भी अच्छी कहानी में ये सभी गुण सहज रूप में रहते ही हैं।

कमलेश्वर ने 'सारिका' (1972) के संपादकीय में 'समांतर' कहानी आंदोलन का सूत्रपात किया; जबकि वे 'नई कहानी' के आंदोलन में एक अग्रणी कथाकार थे। लेकिन अब वे 'नई कहानी' लेखन से विरक्त होने लगे थे। उनके साथ कामतानाथ, इब्राहीम शरीफ, से. रा. यात्री, जितेन्द्र भाटिया, हिमांशु जोशी, दिनेश पालीवाल आदि युवा कहानीकार थे। कमलेश्वर ने योजनाबद्ध तरीके से इस आंदोलन को चलाया, जिसके केंद्र में वे स्वयं रहे। 'सारिका' में दस 'समांतर विशेषांक' प्रकाशित कर और 'मेरा पन्ना' नाम के संपादकीय लेखों में कमलेश्वर ने इस आंदोलन का विचार–पक्ष प्रस्तुत किया। साथ ही उन्होंने बम्बई, कलकत्ता, राजगीर आदि स्थानों पर 'समांतर' गोष्ठियों का आयोजन भी किया; बावजूद 'समांतर' एक नारा ही बनकर रह गया। 'समांतर' के पश्चात् डॉ. राकेश वत्स ने पूना की एक गोष्ठी में 'सक्रिय कहानी' विषयक आलेख का पाठ किया और 'सक्रिय कहानी' पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। राकेश वत्स के अनुसार ''सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है–आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी।'' परंतु 'चेतनात्मक ऊर्जा' और 'जीवंतता' तो 'सक्रिय कहानी' क्या किसी भी महत्वपूर्ण रचना के प्राणवान तत्त्व हैं। इसलिए यह आंदोलन भी निष्क्रिय हो गया।

सन् 1977 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय में जनवादी विचार मंच की स्थापना हुई और इसके तत्त्वावधान में अक्टूबर 1978 में दिल्ली में हिंदी कथाकारों और कथा–समीक्षकों की गोष्ठी आयोजित की गई। इसमें 'जनवादी कथा रचना' संबंधी आलेख पढ़े गए। सन् 1982 ई. में दिल्ली में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना हो गई। इस प्रकार जनवादी कहानी आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसमें शोषक वर्गों के प्रति विद्रोह और सामान्य जन के प्रति पक्षधरता की भावना प्रमुख है। लेकिन जनवादी कहानी को परंपरा रूप में समृद्ध चेतना प्राप्त हुई। यशपाल की कहानी 'परदा', रांगेय राघव की 'गदल', भैरव प्रसाद गुप्त की 'हड़ताल', शेखर जोशी की 'बोझ', मधुकर गंगाधर की 'उठे हुए हाथ', मार्कण्डेय की 'बीच के लोग' प्रभृति कहानियाँ जनवादी कहानी की प्राक्भूमि हैं।

नौवें दशक तक आते–आते हिंदी कहानी एक तरह से आंदोलन मुक्त हो गई। परंतु यह कहना युक्तिसंगत नहीं है कि आठवें दशक के बाद की कहानियाँ ही 'समकालीनता' को प्रतिबिंबित करती हैं। वस्तुतः 'नई कहानी' के पूर्व के कहानीकार, 'नई कहानी' के समय के कहानीकार, आंदोलन–मुक्त कहानीकार और समकालीन कथा लेखकों की पीढ़ी – सभी समकालीन के सुदृढ स्तंभ हैं; अपनी–अपनी दृष्टि से सभी ने 'समकालीन कहानी' को सुपुष्ट किया है, संवर्धन किया है। 'समकालीन कहानी' का फलक अत्यंत व्यापक है। इसमें जिन्दगी की विभिन्न समस्याओं को गंभीरतापूर्वक जाँचा–परखा गया है। ये कहानियाँ जहाँ एक ओर परिवेश की विविध समस्याओं और स्थिति से साक्षात्कार करती हैं, चाहे वह समाजार्थिक–राजनीतिक, शैक्षिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और विसंगतियों को उजागर करती हैं वहीं दूसरी ओर मानवीय चरित्र और संबंधों की विवृति भी करती हैं। यानी आज की कहानियाँ सामाजिक स्थितियों का चित्रण कर मानवीय संबंधों की जटिलता पर विचार करती हुई व्यक्ति–चरित्र का उद्घाटन करती हैं। 'समकालीन कहानी' में नगर–बोध की अभिव्यक्ति, स्वार्थपरता, पारिवारिक बिखराव, कृत्रिम व्यवहार, बाह्याडम्बर, मूल्य–विघटन, आंतरिक टूटन–घुटन, ऊबन, अकेलेपन, निम्न– मध्यवर्गीय विवशता, स्त्री–मन की पीड़ा, स्त्री–सशक्तिकरण, व्यवस्था–परिवर्तन की आकांक्षा, ग्राम्य जीवन में बदलाव की अनिवार्यता, दलित चेतना, सामाजिक यथार्थ का आभ्यंतरीकरण और आधुनिक जीवन की व्यापकता आदि को विषय बनाकर कहानियाँ लिखी गईं।

बीसवीं शताब्दी के अंत में साहित्य जगत में आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता का प्रवेश हो गया। आज के समय में वैज्ञानिक दृष्टि ने मनुष्य को वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ एवं तटस्थ निर्णय लेने की शक्ति दी है जिसके आधार में सहज मानवीय विवेक है। लेकिन आधुनिकता की अंधी दौड़ में हम कभी–कभी सामाजिक मर्यादाओं और मानव मूल्यों का परित्याग कर देते हैं। जबकि परंपरा का परित्याग करना घातक सिद्ध होगा। परंपरा ही आधुनिकता को अनुशासित और स्थायित्व प्रदान करती है। वैज्ञानिक दृष्टि, यथार्थ चेतना एवं बौद्धिकता आधुनिकता की आधार शिला है। परंतु इसकी जगह अब उत्तर– आधुनिकता और भूमंडलीकरण का प्रवेश हो गया है। उत्तर–आधुनिकतावाद लगातार घोषणा कर रहा है कि साहित्य और इतिहास मर चुका है। सेमुअल बैकेट ने 'एंडगेम' नाटक में अपने एक पात्र क्लोव से कहलवा दिया– ''समाप्त हो गया, वह सब समाप्त हो गया, लगभग समाप्त हो गया, उसे लगभग समाप्त हो ही जाना चाहिए।'' इस विचार को आगे चलकर ल्योतार, लेकां, फूको और देरिदा जैसे उत्तर आधुनिकों ने आगे बढ़ाया।

जापानी मूल के अमेरिकावासी विद्वान फ्रांसिस फुकुयामा ने 'इतिहास का अंत और अंतिम आदमी' के नाम पर एक किताब लिखी है। फुकुयामा ने अपनी पुस्तक 'दि ग्रेट डिस्ट्रक्शन' में लिखा है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में तेजी से सामाजिक विघटन हुआ है, हर क्षेत्र में परंपरागत कुलीनतंत्र विघटित हुआ है। शादी और जन्म दरों में कमी आई है और तलाक में वृद्धि हुई है। फुकुयामा कहते हैं कि संस्थाओं का ही नहीं, व्यक्तियों का और व्यक्तित्वों का भी विघटन हुआ है। समाज में एक दूसरे के प्रति लोगों की रुचि नहीं है। समाज में लोगों के आपसी संबंध मात्र औपचारिक रह गए हैं। लेकिन फुकुयामा यह नहीं बताते कि इन सभी विघटन के पीछे और मूल्यों के ह्रास का मुख्य कारण पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व और स्वार्थांधता है। जैक देरिदा का 'विखंडनवाद का सिद्धान्त' (जेमवतल व किमबवदेजतनब.जपवद) इतिहास एवं ऐतिहासिक चरणों में विश्वास करता है। देरिदा के अनुसार 20वीं शताब्दी तक जिन विचारों और अवधारणाओं का प्रतिपादन किया गया, यह जरूरी नहीं कि उन्हें सही माना जाए। इन्हें विखंडित करने की जरूरत है। जे. एफ. ल्योतार ने 'दी पोस्ट मॉडर्न कन्डीशन' नामक पुस्तक में लिखा है, ''ज्ञान का भंडारण, ज्ञान पर इजारे का जमाना लद गया। अब उसे खरीदा या बेचा जा सकता है। वह पण्य है। इसमें से आदिम आग जैसी पवित्रता, मौलिकता, श्रेष्ठता, गोपनीयता निकाल ली गई है। वह अब एक विनिमय की वस्तु है, अन्य चीजों की तरह।'' वह आगे लिखता है, ''औद्योगिक क्रांति के बाद के इस समय में ज्ञान की अवस्था (जंजमे व ज्ञिदवूसमकहम) और संस्कृति की स्थिति नए

युग में प्रवेश कर गई है। इसे उत्तर–औद्योगिक या उत्तर–आधुनिक युग कह सकते हैं।'' परंतु यह भी एक वास्तविकता है कि उत्तर आधुनिकवादियों के लगातार हमले के बावजूद साहित्य खूब रचा जा रहा है, उपन्यास और कहानियाँ प्रचुर मात्रा में लिखी जा रही हैं और संकलन भी खूब छप रहे हैं तथा उनका बहुत बड़ा पाठक–वर्ग भी है।

समकालीन कहानियों में निम्न वर्ग की गरीबी और मध्य वर्ग के आर्थिक अभावों से ग्रस्त जिन्दगी को प्रमुखता से अंकित किया गया है। इन कहानियों के पात्र विषम आर्थिक परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को कायम करने की एक भयंकर लड़ाई लड़ते नज़र आते हैं। ग्राम्य जीवन परिवेश के संक्रमणकालीन समाज और उसके चरित्र भी इन कहानियों में उद्घाटित हैं। साथ ही इन कहानियों में नगरीय–महानगरीय जीवन की समस्याओं का भी हमें जीवंत चित्रण मिलता है। राजनीतिक– प्रशासनिक एवं अन्य क्षेत्रों में फैली भ्रष्टता पर भी इन कहानियों में काफी लिखा गया है। शिक्षित युवकों द्वारा शिक्षण संस्थाओं में अनुशासनहीन गतिविधियों पर भी सूक्ष्मता से विचार किया गया है। पारिवारिक संबंधों की उष्मा के शेष हो जाने की पीड़ा को भी कथा–लेखकों ने मार्मिक अभिव्यक्ति दी है और वृद्धों के अकेलेपन को भी। समकालीन दौर की कहानियों में माँ–बाप के 'पुराने' पड़ जाने और बेगानेपन का
दर्द बहुत गहराई से चित्रित हुआ है। साथ ही स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलता को भी लेखकों ने गहराई से अभिव्यंजित किया है। स्पष्ट है कि आज की कहानी में जिन्दगी की विविध समस्याओं को गंभीरता से जाँची–परखी गई है, जिनमें मानवीय व्यक्तित्व की सभी स्थितियों को नए–नए कोण से उठाकर चित्रित किया गया है।

ग़ज़लें

अभिनव अरुण,
निराला नगर,
महबूबगंज, वाराणसी,
9415678748

बदन खुशबू में लिपटा है मगर आँखों में पानी है
ये किसी याद में खोयी हुई सी रात रानी है

हया से पत्तियाँ भीगी हुई शाखों से हैं लिपटी
सुबह की ताज़गी ने रात की लिखी कहानी है।

हमें चुभ जानेवाले ख़ार कलियों को नहीं छूते
सजे सँवरे हुए गुलशन पे किसकी हुक्मरानी है

तेरी सोहबत में दिन मेरा खिला है गुलमुहर जैसा
तेरी यादों में डूबी रात मेरी ज़ाफ़रानी है

दिया होकर भी अब मैं आँधियों से जीत जाता हूँ
दुआ माँ की है या फिर कोई ताकत आसमानी है

फकीरों को नहीं होता है ग़म कुछ खोने पाने का
वो रहते एक सा उनकी अमीरी ख़ानदानी है

किनारा तोड़कर नदियाँ उफनती हैं जवानी में
मगर सागर बताता है कि उनमें कितना पानी है

धनक कहते हो जिसको, वो कुदरत का है एक तोहफा
धरा को आसमां ने प्रेम की भेजी निशानी है

मुहब्बत एक खुशबू है रहेगी रहती दुनिया तक
यही कान्हा है राधा है यही मीरा दीवानी है

मैं खुद को आज़माने के लिए ही घर से निकला हूँ
मुझे मालूम है बाहर हवा बेहद तूफानी है

तेरे हाथों के जैसा स्वाद सालन में नहीं रहता
वही है आग पानी माँ वही चौका चुहानी है

मुहब्बत पाटती है दो जहाँ की दूरियाँ 'अभिनव'
करम इसपर खुद का है ये एक जज़्बा रूहानी है।

सच को अपनाने का जब ऐलान किया
सबने मुझ पर बाणों का संधान किया
जागो रण में नींदें भारी पड़ती हैं
अभिमन्यु ने प्राणों का बलिदान किया

आँसू की दो बूँदें टपकी पन्नों पर
मैंने अपने किस्से का उन्वान किया

सोने की अपनी अपनी लंकाएँ गढ़
हमने खुद में रावण को मेहमान किया

देश निकाला देकर सारे पेड़ों को
हमने अपने शहरों को वीरान किया

भूख गरीबी महँगाई दो दिन के हैं
कुबड़े काने राजा ने फरमान किया

दूषित होकर भी गंगा गंगा ही है
बेशक हमने अपना ही नुकसान किया

वृद्धाश्रम में नाम लिखाकर भूल गये
हमने अपनों का ऐसा सम्मान किया

बाहर–बाहर उन्नतशील लबादे हैं
भीतर–भीतर मूल्यों का श्मशान किया।

वर्ना अनजान शहर लगता है
माँ जो होती है तो घर लगता है

दौर कैसा है नई नस्लों का
वक्त से पहले ही पर लगता है

है इधर रंग बदलती दुनिया
मैं चला जाऊँ उधर लगता है।

जाने किस दर्द से गुज़रा होगा
शेर जज़्बात से तर लगता है

इस ऊँचाई से न देखो मुझको
दूर से सौ भी सिफर लगता है

इन चटख फूलों में मकरंद नहीं
ये दवाओं का असर लगता है।

इन घरोंदों में ये ख़ामोशी क्यों
कागज़ी है ये शज़र लगता है।

फूल की खुशबू को हम यूँ भी लुटा देते हैं
इश्क़ करते हैं जमाने को बता देते हैं

एक चिंगारी है सीने में हवा देते हैं
हम ग़ज़ल कहते हुए खुद को सजा देते हैं

जिसकी शाखों पे घरौंदों में मुहब्बत ज़िंदा
ऐसे पेड़ों को परिंदे भी दुआ देते हैं

इश्क लहरों से अगर है तो क़िला गढ़ना क्या
रेत के घर को बनाते हैं मिटा देते हैं

हम भी शेरों में बयाँ करते हैं अफ़साने को
और अफ़साने को तारीखी बना देते हैं

हो यकीं खुद पे तो सैलाबों को रुकना होगा
हौसलेवालों को रास्ता भी खुदा देते हैं।

क्या कहें मुझमें निभाने की सलीका ही नहीं
अपनी फ़ितरत की आईना दिखा देते हैं।

परख

प्रेमचंद के झूठे दावेदार

कमलकिशोर गोयनका,
ए–8 अशोक विहार,
फेज प्रथम दिल्ली–110052,
मो. 9811052469

प्रेमचंद हिन्दी के ऐसे लेखक हैं, जो जीवनकाल से आजतक तरह–तरह के झूठे दावों से आहत होते रहे हैं। उनके जीवनकाल में उनपर आरोप लगाये गये, जैसे वे ब्राह्मणद्रोही हैं, अंग्रेजी साहित्य के नकलची हैं, वे समसामयिकता के लेखक हैं आदि। प्रेमचंद के देहांत और भारत की स्वतंत्रता के बाद मार्क्सर्ववादियों ने उन्हें अपने शिकंजे में कस लिया और घोषणा कर दी कि प्रेमचंद का अंतिम वर्षों में गांधीवाद से मोहभंग हो गया था और वे मार्क्सवादी हो गये थे। मार्क्सवादियों के इस दावे ने प्रेमचंद को मार्क्सवाद का मसीहा तो बना दिया, परन्तु उन्हें देश की परंपरा, संस्कृति, मूल्य, मानवीयता तथा राष्ट्रीयता से बहिष्कृत करके भारतीयता से ही दूर कर दिया। मार्क्सवादियों के इस झूठे दावे की कलई खुल चुकी है और वे अब भारतीयता के संवाहक लेखक के रूप में स्वीकृत होकर पूरे विश्व के प्रिय लेखक बने हुए हैं।

प्रेमचंद पर ऐसे झूठे दावे अभी खत्म नहीं हुए हैं। ऐसे ही दो किताबें इधर मेरी नजर में आयी हैं। पहली किताब है–'समक्ष' जिसमें प्रेमचंद की बीस उर्दू–हिन्दी कहानियों का समांतर पाठ दिया है। इस योजना के प्रस्तावक तथा प्रकाशन महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय है। प्रकाशक में प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय की प्रकाशन संस्था हंस प्रकाशन, इलाहाबाद का नाम भी छपा है। आरंभ में 'विश्वविद्यालय का वक्तव्य' शीर्षक से उनकी इस प्रकाशन योजना का परिचय तथा उसकी नीतियों की चर्चा है, परन्तु उसपर किसी के हस्ताक्षर नहीं है। फिर भी यह मानना उचित होगा कि यह वक्तव्य तत्कालीन कुलपति अशोक वाजपेयी का है, क्योंकि वही इसके प्रतीक लेखक माने जा सकते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि अशोक वाजपेयी के कुलपतित्व काल में इसकी योजना बनी और उन्होंने इसके संपादन का दायित्व अमृत राय के सुपुत्र प्रो. आलोक राय तथा मुश्ताक अली को सौंपा तथा 440 पृष्ठों की इस पुस्तक के प्रकाशन का व्यय भी उठाया। पुस्तक में दिये विवरण से यह स्पष्ट नहीं है कि हंस प्रकाशन, इलाहाबाद का नाम प्रकाशक के रूप में क्यों दिया गया।

'समक्ष' पुस्तक में प्रकाशित 'विश्वविद्यालय का वक्तव्य' में व्यक्त विचारों की परीक्षा पहले जरूरी है। इसमें 'नये किस्म की पाठ्य सामग्री' देने के दावे के साथ यह दावा भी किया गया है कि यह पुस्तक 'लोकतांत्रिक और पारदर्शी प्रक्रिया' तथा विशेषज्ञों की समिति द्वारा चुने गये संपादकों के द्वारा तैयार की गयी है। खेद है, वक्तव्य में न तो लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया और न विशेषज्ञों की समिति के सदस्यों के नाम ही दिये गये, अतः ये दावे झूठे प्रतीत होते हैं। विश्वविद्यालय के विशेषज्ञ समिति को यह स्पष्ट करना चाहिए था कि उसने किस आधार पर आलोक राय तथा मुश्ताक अली को इस पुस्तक का संपादक क्यों बनाया?क्या इन दो विद्वानों ने इससे पूर्व प्रेमचंद पर कोई अनुसंधान किया है, क्या वे प्रेमचंद के अध्ययन–अध्यापन से सम्बद्ध रहे हैं तथा क्या हिन्दी–उर्दू साहित्य इन्हें प्रेमचंद विशेषज्ञ के रूप में स्वीकार करता है?क्या विशेषज्ञ समति को मालूम था कि मदन गोपाल, कमर रईस, कमल किशोर गोयनका आदि ने प्रेमचंद के अध्ययन और अनुसंधान को जीवन के चार–पाँच दशक दे दिये और यदि नहीं मालूम था, तो विशेषज्ञ समिति के कहने का दावा झूठा है।

हिन्दी के मार्क्सवादियों को कमल किशोर गोयनका से एलर्जी है, परंतु मदन गोपाल और कमर रईस तो थे और इनसे बेहतर कोई दूसरे व्यक्ति नहीं हो सकते थे। अतः इस पुस्तक के संपादकों का चयन लोकतांत्रिक प्रक्रिया से नहीं हुआ, यदि होता तो प्रेमचंद के विशेषज्ञों को रखा जाता। इससे स्पष्ट है कि संपादकों को नियुक्त करनेवाली विशेषज्ञ समिति भी प्रेमचंद के विशेषज्ञ से नहीं बनी थी और यदि उसमें प्रेमचंद के विशेषज्ञ थे तो उन्हें बताना चाहिए था कि 'समक्ष' पुस्तक के लिए आलोक राय तथा मुश्ताक अली का चयन किस आधार पर हुआ। आलोक राय अमृतराय के पुत्र और प्रेमचंद के पौत्र हैं तथा अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं तथा प्रेमचंद पर उनकी कोई पुस्तक है, इसकी मुझे जानकारी नहीं है तथा मुश्ताक अली के प्रेमचंद संबंधी कार्यों की मुझे जानकारी नहीं है। यह मेरी अज्ञानता हो सकती है; परन्तु संपादकों एवं प्रकाशकों का भी यह दायित्व था कि वे पुस्तक में संपादकों के प्रेमचंद संबंधी कार्यों का विवरण देते, जिससे पाठक को यह तसल्ली हो कि यह कार्य प्रेमचंद के वास्तविक विशेषज्ञों द्वारा ही किया गया है।

'समक्ष' में आलोक राय ने 'भूमिका' लिखी है, परन्तु 'चयन के संबंध में' टिप्पणी किसने लिखी है, इसका कोई उल्लेख नहीं है। इस टिप्पणी ('चयन के संबंध में') में इतनी गलतियाँ हैं तथ्यों की तथा उपलब्ध सूचनाओं को छोड़ दिया गया है कि इसका दोष किसे दिया जाए?आलोक राय ने अपनी 'भूमिका' में हिन्दी–उर्दू, भाषागत सांप्रदायिकता, पाठ–भेद, नुक्तों की आवश्यकता, पाठकों की विभिन्नता आदि पर जो विचार व्यक्त किये हैं, उनपर अच्छी–खासी बहस हो सकती है, परन्तु उनका यह दावा सच नहीं है कि प्रेमचंद की उर्दू एवं हिन्दी परम्पराओं के अदीब प्रायः एक–दूसरे के पाठ या टैक्ट्स से अनभिज्ञ रहे हैं। आश्चर्य है कि आलोक राय ने सन् 1983 में छपी (लगभग 20 वर्ष पूर्व प्रकाशित) जाफर रज़ा की पुस्तक 'प्रेमचंद : उर्दू हिन्दी कथाकार' का उल्लेख किया है; परन्तु यह नहीं मानते कि उर्दू के अदीब प्रेमचंद की रचना के उर्दू–हिन्दी पाठों से परिचित थे। दुःख इसका भी है कि उन्होंने कमल किशोर गोयनका की पुस्तक 'प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी' (1980) तथा 'प्रेमचंद की हिन्दी उर्दू की कहानियाँ (1990) पुस्तक भी नहीं देखी, जिनमें प्रेमचंद की कहानियों के हिन्दी–उर्दू पाठों का हिन्दी में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। 'समक्ष' पुस्तक के प्रकाशन के 12 वर्ष पूर्व 'प्रेमचंद की हिन्दी–उर्दू कहानियाँ' पुस्तक भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली से छपी थी और उसमें प्रेमचंद की 25 कहानियों के हिन्दी तथा उर्दू पाठ देने के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया था। आश्चर्य है कि कुलपति अशोक वाजपेयी, आलोक राय तथा मुश्ताक अली किसी को भी इन पुस्तकों की जानकारी नहीं थी, जबकि ये दोनों पुस्तकें हिन्दी के प्रतिष्ठित प्रकाशकों (भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली तथा पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली) से प्रकाशित हुई थीं। यदि इन व्यक्तियों ने किसी प्रेमचंद के अध्येता से पूछा होता, तो इन्हें इन पुस्तकों की जानकारी मिल जाती, परन्तु यही महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय तथा उसके कुलपति की लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी प्रक्रिया है, जिसमें उपलब्ध पुस्तकों एवं उनके रचयिताओं की उपेक्षा एवं अवमानना तो है ही, साथ ही पारदर्शी निर्णय भी गोपनीयता के आवरण में छिप जाते हैं। 'समक्ष' पुस्तक की मौलिकता तथा नयी किस्म की पाठ्य–सामग्री देने का दावा भी एकदम खोखला एवं झूठा सिद्ध हो जाता है। इसके साथ हिन्दी संसार को धोखे में रखने तथा 'समक्ष' पुस्तक पर हुआ

अपव्यय का दोष भी जुड़ जाता है।

'समक्ष' चयन के संबंध में शीर्षक टिप्पणी तो अनेक गंभीर दोषों एवं त्रुटियों से भरी पड़ी है। इन दोषों–त्रुटियों की जिम्मेदारी किसकी है? इसपर भी विश्वविद्यालय तथा संपादक इस पुस्तक के अनुसंधान की दृष्टि से ठोस तथा नये किस्म के पाठ्य–सामग्री घोषित करता है। इस टिप्पणी से यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

इस टिप्पणी के अनुसार प्रेमचंद की उर्दू कहानियाँ डॉ. कमर रईस की 1994 में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद के नुमाइंदा अफ़साने' तथा प्रेमगोपाल मित्तल की उर्दू पुस्तक 'प्रेमचंद के सौ अफ़साने' (प्रकाशित 1990 में) से लिये गये हैं। यह अशोक वाजपेयी के 'महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय' कहानियों के प्रथम प्रकाशन एवं प्रथम संस्कारण के पाठ की पूर्णतः उपेक्षा की गयी और यह सोचने का भी कष्ट नहीं किया गया कि प्रथम प्रकाशन अथवा प्रथम संस्करण में प्रकाशित कहानियों का उर्दू पाठ 70–80 वर्षों के बाद सन् 1990 तथा 1994 में प्रकाशित पुस्तकों में आते–जाते कितना बदल गया होगा। कमल किशोर गोयनता की कई पुस्तकों में इसका सप्रमाण विवेचन है कि प्रेमचंद की रचनाओं में प्रथम संस्करणों तथा आज के संस्करणों के पाठ में काफी अंतर आ गया है। अतः 'समक्ष' के संपादकों को 'ज़माना', 'हमदर्द', 'कहकशाँ', 'ज़ामिया' आदि उर्दू पत्रिकाओं तथा 'सोजे वतन' 'मेरे बेहतरीन अफ़साने, 'प्रेम चालीसी–2', 'फिरदौसे ख्याल', 'वारदात', 'निजात', 'जादे राह' तथा 'दूध की कीमत' आदि उर्दू कहानी–संग्रहों के प्रथम संस्करणों से उर्दू कहानियों के पाठ को होना चाहिए था। संपादकों के लिए इन मूल स्रोतों को खोजना आसान नहीं था और शायद इसी कारण आसान रास्ता चुना गया और इसी कारण प्रेमगोपाल मित्तल जैसे अज्ञात संपादक की पुस्तक से भी कहानियाँ ले ली गयीं। संपादक गण कम–से–कम यह तो कर ही सकते थे कि प्रेमचंद की जीवित अवस्था में जो उर्दू कहानी संग्रह छपे थे, उनके प्रथम संस्करण तलाश करते और उनसे ही कहानियों का पाठ लेते। यदि प्रेमचंद के समर्पित शोधकर्ताओं को इस कार्य के लिए चुना गया होता तो इतनी बड़ी भूल नहीं होती। 'समक्ष' में कहानियों के हिन्दी पाठ 'मानसरोवर', 'गुप्त धन' तथा 'कफन' कहानी संग्रहों से लिये हैं, परन्तु वे कौन–से तथा किस वर्ष के संस्करण से लिये गये हैं, इसका उल्लेख नहीं है। यह अनुसंधान के नाम पर मजाक नहीं तो और क्या है?

1. 'चयन के संबंध में' शीर्षक टिप्पणी में बीस उर्दू–हिन्दी कहानियों के प्रथम प्रकाशन तथा संकलन के तथ्य दिये गये हैं, जो कई स्थानों पर इसलिए गलत और अधूरे हैं; क्योंकि संपादकों ने इस विषय से संबंधित पुस्तकों की पूर्णतः उपेक्षा कर दी। यदि उन्होंने 'प्रेमचंद विश्वकोश' तथा 'प्रेमचंद की हिन्दी–उर्दू कहानियाँ' शीर्षक पुस्तकें देखी होतीं तो मौलिकता एवं अनुसंधान के ऐसे झूठे दावे नहीं किये जाते। यह कोई बतानेवाली बात नहीं है कि मौलिक अनुसंधान का दावा करनेवाले विद्वानों के लिए यह जरूरी होता है कि वे संबंधित विषय पर हुए शोधकार्य को गंभीरता से देखें और उसकी आवृति से नहीं उसके दोषों को दूर करते हुए अपने नये निष्कर्षों को प्रस्तुत करें। यह खेदजनक है कि 'समक्ष' पुस्तक को तैयार करते समय संपादकों ने अपने समक्ष अर्थात् हिन्दी संसार के समक्ष उपलब्ध सामग्री की पूर्णतः उपेक्षा कर दी और पाठकों के सामने झूठी मौलिकता का दावा पेश कर दिया।

2. प्रेमचंद की कहानी 'दुनिया का अनमोल रतन' इस पुस्तक में पहले क्रम पर है तथा उसकी प्रकाशन–तिथि के प्रमाण के लिए किन्हीं प्रेम गोपाल मित्तल का उल्लेख किया गया है। यह मित्तल साहब कौन है, ये प्रेमचंद विशेषज्ञ कैसे मान लिये गये, क्या इसके विद्वान संपादक इसे बतायेंगे? यह कहानी उर्दू पत्रिका में छपी थी या नहीं, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, अतः 'सोजे वतन' कहानी संग्रह की प्रकाशन–तिथि जून, 1908 (प्रेमचंद विश्वकोश, खण्ड 2, पृ. 432) है और यही तिथि इस कहानी की प्रकाशन तिथि मानी जानी चाहिए।

3. 'बड़े घर की बेटी' कहानी के लिए संपादकों ने बताया है कि वह सन् 1947 में छपनेवाले 'मानसरोवर', खंड 7 में पहली बार छपी थी, परन्तु वह 'सप्त सरोज', जून 1917 में पहली बार हिन्दी में छपी थी। इसी प्रकार 'नमक का दारोगा' कहानी भी 'मानसरोवर' खंड 8 से पहले 'सप्त सरोज' जून, 1917 में छप चुकी थी। संपादकों ने प्रेमचंद के पहले हिन्दी कहानी संग्रह को भी नहीं देखा।

4. हिन्दी कहानी 'पंच परमेश्वर' की प्रकाशन तिथि जुलाई, 1917 बतायी गयी है, जबकि यह जून, 1916 है। अमृत राय ने भी यही तिथि दी है। इसका अर्थ है कि संपादकों ने अमृतराय की पुस्तक 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' भी नहीं देखी।

5. हिन्दी कहानी 'बूढ़ी काकी' किस हिन्दी पत्रिका में पहले छपी, यह संपादकों के साथ अमृतराय को भी नहीं मालूम। यह कहानी 'श्रीशारदा' के जनवरी, 1921 के अंक में छपी थी। इसी तरह 'पशु से मनुष्य' हिन्दी कहानी 'प्रभा' के फरवरी, 1920 के अंक में छपी थी। 'ब्रह्म का स्वांग' हिन्दी कहानी के प्रथम प्रकाशन के बारे में संपादकों एवं अमृतराय को कोई जानकारी नहीं है। यह कहानी भी 'प्रभा' के मई, 1920 के अंक में छपी थी।

6. 'शतरंज के खिलाड़ी' हिन्दी कहानी के उर्दू रूप 'शंतरंज की बाज़ी' उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' के दिसम्बर, 1924 के अंक में छपी थी। इसकी जानकारी भी इनके पास नहीं थी।

7. आश्चर्य है, संपादकों को प्रेमचंद की पुस्तक 'मेरे बेहतरीन अफ़साने' भी नहीं मिली। यह उर्दू कहानी संग्रह सन् 1933 में छपा था और इसमें 'सुजान भगत' कहानी छपी है।

8. 'नया विवाह' हिन्दी कहानी का विवरण भी गलत है। यह हिन्दी कहानी 'सरस्वती' मई, 1932 में छपी थी और उर्दू में उसके बाद सन् 1933 में, जबकि संपादकों के विचार में यह पहले उर्दू में छपी थी।

9. 'निजात' उर्दू कहानी 'वारदात' से पहले इसी शीर्षक से सन् 1933 में प्रकाशित उर्दू कहानी संग्रह में छप चुकी थी।

10. 'कफन' कहानी के बारे में भी संपादकों द्वारा दी गयी सूचना दोषपूर्ण है। अमृतराय की सूचना गलत है कि यह कहानी 'जामिया' उर्दू पत्रिका में 1936 में छपी थी, जबकि सत्य यह है कि यह कहानी 'जामिया' के दिसम्बर, 1935 के अंक में छपी थी और हिन्दी में 'चाँद' हिन्दी पत्रिका के अप्रैल, 1936 के अंक में पहली बार छपी थी। अफसोस है, संपादकों को हिन्दी 'कफन' के प्रथम प्रकाशन की भी कोई जानकारी नहीं थी। हिन्दी कहानी 'मृतक भोज' जनवरी, 1932 में पुस्तक रूप में छपी थी, यह भी उन्हें ज्ञात नहीं था।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'समक्ष' के संपादकों ने प्रेमचंद की उर्दू तथा हिन्दी कहानियों के प्रथम प्रकाशन तथा प्रथम संकलन आदि की पूरी तरह खोज–खबर नहीं की तथा उपलब्ध सामग्री का भी उपयोग नहीं किया एवं दावा यह किया कि यह पुस्तक मौलिकता तथा वैज्ञानिक अनुसंधान का जीवंत प्रमाण है। हिन्दी में अनुसंधान की जैसी दुर्दशा है, यह पुस्तक 'समक्ष' वास्तव में उसका जीवंत उदाहरण है। प्रेमचंद की उर्दू कहानियों के नागरी लिपि में लिप्यंतरण की परीक्षा अभी शेष है, जो हिन्दी–उर्दू भाषा के विशेषज्ञ ही बैठकर कर सकते हैं, परन्तु 'समक्ष' पुस्तक का यह प्रयास कितना सार्थक, कितना मौलिक तथा कितना शोध आधारित है, यह उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हिन्दी के विद्वान अब तय कर सकते हैं तथा महात्मा गाँधी हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के

अधिकारियों तथा संपादकों से यह प्रश्न भी पूछा जाना चाहिए कि ऐसे अमौलिक एवं निरर्थक कार्य में वर्षों की मेहनत तथा लाखों के धन के अपव्यय का औचित्य क्या था?यदि अशोक वाजपेयी तथा प्रो. आलोक राय एवं मुश्ताक अली ने भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद की हिन्दी–उर्दू कहानियाँ' देखी होती, तो निश्चय ही 'समक्ष' पुस्तक के कार्य को वे आरंभ ही नहीं करते और यदि करते तो 'समक्ष' का दूसरा ही रूप होता।

प्रेमचंद को लेकर झूठे दावेवाली एक और पुस्तक मेरी नजर में आयी है।यह पुस्तक है–'सोलह अप्राप्य कहानियाँ' अर्थात् प्रेमचंद की अप्राप्य सोलह कहानियों का यह संग्रह किन्हीं तारकेश्वर नाथ सिंह ने संपादित किया है तथा इसका प्रकाशन सुदेश साहित्य मंडल, 16 यू.बी. बंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–110007 से हुआ है।यह सोलह अप्राप्य कहानियों का संग्रह अंदर के पृष्ठों में जाकर 'प्रेमचंद की चुनी हुई सोलह हृदय स्पर्शी कहानियाँ' के संग्रह के रूप में बदल जाता है; परन्तु संपादक और प्रकाशक के ये दोनों ही दावे झूठे हैं।यह न तो अप्राप्य कहानियों का संग्रह है और न प्रेमचंद की चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। इसमें दी गयी सोलह कहानियाँ सभी उपलब्ध कहानियाँ है और प्रेमचंद के कहानी–संग्रहों में मौजूद हैं। इस कहानी–संग्रह की पंद्रह कहानियाँ 'मानसरोवर' खंड 2 से तथा एक कहानी 'मानसरोवर' खंड 3 से ली गयी है। प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'मानसरोवर' (आठ खंड) अपने प्रकाशन काल से आजतक बाजार में उपलब्ध हैं, अतः इनकी कहानियों के इस संग्रह को अप्राप्य कहानियों का संग्रह कहना एकदम असत्य है। प्रेमचंद को लेकर ऐसे झूठे दावे पाठकों को भ्रमित करेंगे और लेखक की गलत तस्वीर पेश करेंगे।संपादक एवं प्रकाशक अप्राप्य कहानियों का संग्रह बताकर इसे सरकारी खरीद में बेचकर लाभ उठाना चाहता है; परन्तु उसे समझना चाहिए कि वह ऐसा करके कितना बड़ा साहित्यिक अपराध कर रहा है। 'प्रेमचंद का प्राप्य साहित्य' (दो खंड) पुस्तक जब भारतीय ज्ञानपीठ ने छापी तो उसमें सारी सामग्री अप्राप्य थी और जब श्रीपतराय ने मेरी दी हुई प्रेमचंद की सोलह अप्राप्य कहानियों का संग्रह 'सोलह अप्राप्य कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित किया तो वे सब कहानियाँ हिन्दी में अनुपलब्ध ही नहीं अज्ञात भी थीं।

इस प्रकार प्रेमचंद को लेकर झूठे दावे किये जा रहे हैं, कहीं ये बौद्धिक हैं और कहीं व्यावसायिक तथा कहीं ये घोर राजनीतिक हैं। ये सभी प्रयास प्रेमचंद को अपने–अपने स्वार्थों और कटखरों में बंद करके उनपर अपना अधिकार करने के क्षुद्र प्रयास हैं, जिनका पर्दाफाश जरूरी है। प्रेमचंद को मार्क्सवादी बानने के झूठे दावे या खोखलापन तो नंगा हो चुका है, अब अन्य दावों के भ्रमजाल को तोड़ना भी जरूरी है। मनुष्य की महानता जहाँ सच्चे अनुयायी पैदा करती है, वहाँ झूठे दावेदार भी कुकुरमुत्ता की तरह उत्पन्न होते हैं, जो महानता के सच्चे रूप को धूमिल करते हैं। प्रेमचंद को ऐसे ही दावेदारों से बचाने की आवश्यकता है। यदि हिन्दी के नामवरी विद्वान इस कार्य को नहीं करें तो प्रेमचंद के पाठकों को इस महत् कार्य को अपने हाथ में लेना चाहिए। प्रेमचंद के वास्तविक स्वरूप की रक्षा के लिए हमें यह तो करना ही होगा।

ग़ज़लें

डॉ. अश्वघोष
महादेव सिंह रोड, देहरादून
मो0 9897700267

(1)
केवल ढाई आखर उसको
हरदम रखते तत्पर उसको
हमसे भारी ही निकला है
जब–जब आँका कमतर उसको
बरसातों में खूब डराता
कच्चे घर में छप्पर उसको
धरती के आगे जाने क्यों
छोटा लगता अंबर उसको
उसको दोस्त प्रश्न हैं केवल
नफ़रत करते उत्तर उसको

(2)
गाँवों को शहरों में लाओ
मत गाँवों को शहर बनाओ
कबसे खोये हो खुद में ही
अब तो खुद से बाहर आओ
ताकत होती है शब्दों में
शब्दों को हथियार बनाओ
ग़म को रहने दो दिल में ही
तितली भौंरे फूल परिंदे
इन पर भी कुछ प्यार लुटाओ।

(3)
वो जब भी मिलने आता है
दूरी को भी संग लाता है
जंगल से बतियाते पंछी
उनसे जंगल बतियाता है
दिन निकले जाने क्यों सूरज
सारी शबनम पी जाता है
जंगल में भटके राही को
जुगनू रस्ता दिखलाता है
सच के आगे झूठ हमेशा
बच्चे जैसा तुतलाता है।

(4)
जीना है अब उसका होकर
जिसको पाया खुद को खोकर
ग़म की इस गठरी को फेंको
क्या पाओगे इसको ढोकर
हर इक बार सँभलना सीखा
जब–जब उसने खाई ठोकर
एक अलौकिक–सा पैकर हूँ
देख ज़रा तू उसमें खोकर
प्यार नहीं उगता खेतों में
देख लिया है हमने बोकर।

ग़ज़लें

खुशीलाल मंजर
चंगेरी, मर्जापुर (बाँका)

(1)
भरी बरसात में नहाना तेरा
याद आता है वो जमाना तेरा
जब की तन्हा में बैठकर मैंने
खूब सुना है गुनगुनाना तेरा
लोग क्या कहते हैं कहने दीजै
मुझे तो याद है मुस्कुराना तेरा
बड़ा बेचैन कर जाता है मुझे
जैसे आकर चला जाना तेरा
मैं तो खामखा बदनाम हो गया
तुझे मुबारक हो बहाना तेरा।

(2)
कभी कुछ जोड़ लेते हैं
समय से होड़ लेते हैं
तुम आबाद रहो कि हम
रास्ता मोड़ लेते हैं
बेबसी देखकर मेरी
वो रिश्ता तोड़ लेते हैं
दाग कुछ दिख नहीं पाये
वो चादर ओढ़ लेते हैं
कुछ लोग हैं जो आज भी
कुछ यादें छोड़ देते हैं।

(3)
कौन लेता भूखे नंगे की खबर
अगर कोई मालदार है तो है
मुझे क्या लेना उसके महलों से
ग़र सीढ़ियाँ घुमावदार है तो है
वाजिव कहें तो मूर्ख कहलाते
अगर कोई समझदार है तो है
किसको चिंता है नाव डूबने की
सिरफिरे हाथ पतवार है तो है
अभी नहीं बिगड़ेगा बेईमानों का
अगर कोई ईमानदार है तो है।

(4)
मुझे मेरे हाल पे छोड़ दीजिए
और अपना रास्ता मोड़ लीजिए
आप तो महान आदमी हैं साहब
कहीं किसी से रिश्ता जोड़ लीजिए
ये दस्तुर है आज के जमाने का
जितना भी लहू है निचोड़ लीजिए
वैसे घी पीना आपकी आदत है
अच्छा होगा कंबल ओढ़ लीजिए
क्या करेगा गुप्तगू कोई मुझसे
बेकार हूँ मैं मुँह मोड़ लीजिये
किस्मत का मारा हूँ क्या मिलेगा
बचा रिश्ता आप भी जोड़ लीजिए।

समीक्षा

मेरे गाँव का पोखरा

डॉ. बलदेव पाण्डेय
फ्लेट संख्या 202 रामनगर
हजारीबाग (झारखंड)
मो.–9334662954

आदमी के भीतर आत्मविश्वास और संघर्ष की भावना जगानेवाली कविताएँ

नीलोत्पल रमेश की सद्य: प्रकाशित कविता–संकलन 'मेरे गाँव का पोखरा' ने पूरे ठसक के साथ साहित्यिक मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज की है। इनकी कविताओं में पर्यावरण के गहराते संकट को जहाँ कोयलांचल की जमीनी सच्चाई के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है, वहीं सामाजिक विद्रुपताओं एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार किया गया है। प्रलेक प्रकाशन, मुम्बई से छपी इस कविता–संकलन की कुल 67 लघु कविताएँ हमें आश्वस्त करती हैं कि विषम परिस्थितियों के इस दौर में कभी कवि कर्म की प्रतिबद्धता सीमा के सिपाही से तनिक भी कमतर नहीं है–

''कविता कहाँ पहुँचती है
जहाँ हो रहा हो बलात्कार
हो रहा हो अन्याय
हो रहा हो अनैतिक काम
बेखटके पहुँचकर
संघर्ष के लिए
हो जाती है तैयार
प्रतिबद्ध सैनिक की तरह।''

नीलोत्पल रमेश की कविताएँ मजदूरों के शोषण, किसानों की बदहाली एवं महँगाई की मार झेलते निम्न मध्यवर्ग की लाचारी को शिद्दत के साथ प्रस्तुत करती है। समाज के निचले तबके के लोगों के शरीर और श्रम के शोषणों के खिलाफ बगावती तेवर रखनेवाले नीलोत्पल रमेश की लेखनी ने समाज की शोषणकारी ताकतों के विरुद्ध एक अघोषित अंतहीन जंग छेड़ रखी है। उनकी यह लड़ाई किसी राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित नहीं है। उनकी कविताएँ गहन मानवीय संवेदना की कोख से उपजी है। उनकी लेखनी भीख माँगनेवाली एक भिखारिन की लाचारी पर राजनैतिक मुहावरेवाली शैली में बात नहीं उठाती है। कवि को भिखारिन और उसकी बेटी की भूख की चिंता से बड़ी एक और चिंता खायी जा रही है–

''भिखारिन की बच्ची
जिसकी उम्र आठ–दस की रही होगी
किसी दिन किसी वहशी का शिकार हो सकती है
क्योंकि इसके जन्म की कथा भी
ऐसे ही किसी वहशी के द्वारा लिखी गयी होगी
जिसके बारे में उसकी माँ भी
ठीक–ठीक नहीं बता सकती।''

नीलोत्पल रमेश लगभग तीन दशकों से हिन्दी में सृजनशील रहे हैं। इनका अनुभव संसार अत्यन्त विस्तृत रहा है। बिहार के एक गाँव में जन्मे और पले–बढ़े नीलोत्पल रमेश विचार और संस्कार दोनों से खाँटी देशज है। 'घुरचिआह' लोगों से इनकी पटरी नहीं बैठती है और न ही हर दिन हर जगह मुखौटे बदलकर खुद को पेश करनेवालों के बीच इनका उठना–बैठना होता है। गँवई संस्कार की सादगी इनकी लगभग हर कविता में मौजूद है, किन्तु शोषण खिलाफ उभरी इनकी उग्रता व्यक्ति के पूरे शरीर में एक झुरझुरी पैदा कर देती है–

''कितना बदल चुका है
और तुझे एहसास तक नहीं
कि इस चश्मे ने
कार्यकुशलता प्राप्त लोगों को
पहचानना ही छोड़ दिया है
अकुशल और चापलूस ही
अब इसकी पहचान बन गये हैं।''

नीलोत्पल रमेश की कविताओं में सत्ता की अव्वल दर्जे की संवेदनहीनता के बीच से उभरकर आनेवाला जीवन–संघर्ष उनकी बेवाक शैली में चित्रित हुआ है। देश में युवाओं की बढ़ती बेरोजगारी और किसानों की सामूहिक आत्महत्याएँ अब राष्ट्रीय खबरें नहीं बनती हैं। झारखंड में जंगल की लूट और जंगल के कानून से गाँव के मजदूर किसान तबाह हैं। 'एक तरफ पुलिस, दूसरी तरफ पार्टी', 'एक तरफ कुआँ और दूसरी तरफ खाई' वाली स्थिति में पिसते हुए गाँव के लड़के शहरों में खाक छानते फिर रहे हैं। एक ओर कोयला ढोनेवाली कंपनियों ने लूट मचा रखी है, तो दूसरी ओर विस्थापन का दंश झेलते साइकिल से कोयले की बोरी ढोते तेरह–चौदह साल के बच्चों की रीढ़ की हड्डी कमान की तरह झुकी जा रही है। जिस दिन कोयला ढोनेवाला वह लड़का गश्त लगाती पुलिस को मनमाने पैसे नहीं दे पाता, उस दिन पीठ पर डंडों के दो–तीन निशान लेकर घर लौटता है–

''वह निकल पड़ता है तड़के ही
कोयले की बोरी से लदी
साइकिल को लेकर
ताकि दोपहर तक पहुँच सके राँची।''

'मेरे गाँव का पोखरा' कविता संकलन ग्रामगंधी कविताओं से भरी पड़ी है। इन कविताओं में आपको गाँव का जर्रा–जर्रा अपनी सीधी महक के साथ मौजूद मिलेगा। आम की मंजर से महकती अमराइयाँ, कीचड़ में अंदर तक धँसी हुई धनरोपनी करती औरतों की मांसल पिंडलियाँ, उनकी खनकती हँसी–ठिठौली और रोपनी के गीतों के साथ संगीतमय हो उठा ग्रामांचल इन कविताओं में आपको भरपूर जिंदगी के साथ मिल जाएगा। लेकिन इस संदर्भ में खास बात ये है कि ये सारी 'नास्टेल्जिक' अर्थात् अतीत राग में डूबी हुई है। गाँव अब गाँव नहीं रह गया है। कवि को पीड़ा है कि कोस भर पोखरा, अब पोखरी में बदल चुका है। जिस मैदान में वह बचपन में अपने साथियों के साथ चौका और कबड्डी खेला करता था, वहाँ दबंग एवं स्वार्थी तत्वों ने अपना कब्जा जमा रखा है। जनसमुदाय की संक ुचित होती जा रही मानसिकता के प्रतीक के रूप में गाँव का पोखरा उभरकर सामने आया है–

''समय की मार
और लोगों की
संकुचित मानसिकता ने
इस पोखर को
पोखरी बना दिया है
जो दिनों–दिनों
और सिकुड़ता रहा है।''

नीलोत्पल रमेश के लिए उनका गाँव, गाँव के लोग, संयुक्त परिवार

के सदस्य, कोस भर साथ पैदल चलकर पढ़ने जानेवाले सहपाठी, सभी समग्रता में एक इकाई हैं। यही गाँव जब अपना कलेवर बदलता है, तो काफी पीड़ा होती है। गाँव में बढ़ती कटुता और वैमनस्यता, जाति के नाम पर आरक्षण एवं वोट की राजनीतिक विद्वेष से आदमी और आदमी के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। ऊपर से सारा गाँव उग्रवाद के आतंकी साये में जी रहा है। 'गाँव में दोस्त का पत्र' कविता में कवि कहता है–

''जहाँ तुम हो
खेलते थे कबड्डी और चीका
वहाँ पुलिस कैंप लगाए
गाँव की हर गतिविधियों पर
डाले रहती है नज़र
चैन की साँस लेना
मुहाल हो गया है अब
पूरे गाँव का।''

प्रेम और रूमानियत के साथ–साथ नीलोत्पल रमेश पारिवारिक संवेदना के कवि हैं। नौकरी के सिलसिले में एक लंबे प्रवास की पीड़ा झेलते कवि के भीतर उसकी माँ, भाई–बहन, पिता ही नहीं, सारे पुरजन की यादें समायी हुई हैं। माँ की सीख, बहन का दुलार और भाइयों के साथ झिंगामस्ती के वे सारे दिन इन कविताओं में कुछ इस प्रकार चित्रित हैं कि ये आपके बचपन की मीठी यादों को लेकर अतीतरागी बना देंगी। इसके अलावे 'अजन्मी बेटियाँ' और 'बेटी का पत्र माँ के नाम' जैसी मार्मिक कविताएँ भावुक कर देनेवाली हैं।

नीलोत्पल रमेश उद्यम जिजीविषा के कवि हैं; क्योंकि इनके आदर्श दशरथ मांझी और दाना मांझी जैसे कर्मवीर महापुरुष हैं। इनकी कविताएँ जिस परिवेश में साँसें लेती हैं, वहाँ जीवन की प्रतिकूलताओं के साथ निरंतर चलनेवाला संघर्ष जरूर है, परन्तु कहीं भी पराजय और हताशा नहीं है। इस परिवेश के पात्र कोयला के चट्टानों की तरह मजबूत शरीर और मजबूत इरादोंवाले हैं। संकलन की कविताएँ आदमी के भीतर आत्मविश्वास और संघर्ष की चेतना जगानेवाली सकारात्मक सोचवाली कविताएँ हैं। बहुत ही सुंदर कलेवर में यह संकलन पठनीय और संग्रहणीय बन पाया है।

कविताएं

छतरी

संजय वर्मा 'दृष्टि',
मनावर (धार)

आज आँखें भर आईं
पिता की जब याद आई
बारिश की बूँदों ने
दरवाजे के पीछे टंगी
पिता की छतरी की
याद दिलाई।

संभाल कर रखी थी माँ ने
छतरी
नये जमाने के रेनकोट में
बेचारी छतरी की क्या बिसात

मगर ये यादों के दर्द को
वो ही महसूस कर सकता
जिनके पिता अब नहीं हैं

बेजान छतरी बोल नहीं सकती
यादों में सम्मिलित होकर
आँखों में आँसू छलकाने का
दम जरूर रखती है।

जीवन की आपाधापी से
परे हटकर दो पल
अपनों को जरा याद कर देखे
क्योंकि ये बेजान बातें नहीं है

यकीन ना हो तो फोटो एलबम
के पन्ने उलटकर देखे
आँखों से आँसू ना झलकें
तो दुनिया और रिश्तों से
विश्वास उठ ही जाएगा

इसलिए अपनों की यादें
और उनकी चीजों को
संभाल कर रखें
ये ही जीवन में
उनके न होने पर
उनके होने का अहसास
ताउम्र तक कराती रहेगी
जैसे पिता की छतरी।

रोटी

मोहनदास नैमिशराय
8860074922

नई शताब्दी में भी
रोटी माँगते हो बाबा
मंदिर के लिए कोई भूखंड माँग लेते
सत्ता के दरबार में जाकर
या फिर मस्जिद
और गुरुद्वारे के लिए जमीन
देश के तमाम भिखारियों को
इकट्ठा कर मठ या आश्रम के लिए
खाली पड़े किसी पार्क पर
कब्जा कर सकते थे
वह तुमने नहीं किया
तुमने देश में होनेवाले
पहले लोकतंत्र का
चुनाव तो देखा होगा
अम्बेडकर को भी सुना होगा
और नेहरू की सियासत से भी
अवश्य ही रू–ब–रू होगे
पर तुमने नीरो को
नहीं देखा होगा
जिसने रोटी माँगते
लोगों को कहा था
केक खाओ
हाँ मोदी को तो जरूर देखा होगा
और सुना भी होगा
सब्र रखो
और मेरे मन की बात सुनो
अच्छे दिन जरूर आयेंग
वैसे अच्छे दिनों की आस में
तुम बूढ़ा जरूर हो गये हो

अंग्रेजी राज से छुटकारा लेते हुए
गाँधी ने भी रामराज की बात की थी
सच कहूँ तो
तुम चश्मदीद गवाह हो
राजतंत्र के
और लोकतंत्र के भी
राजनीति की धूप के भी
और आंदोलन की आँधी के भी
तुम्हारी जवानी
आजादी की जंग में
धुआँ–धुआँ हो गयी होगी
और बुढ़ापा
अच्छे दिनों की इंतजार में
पर तुम अपने मन की बात
नहीं कह सके कभी भी
कहते भी तो
कौन सुनता तुम्हारे मन की बात?
तुम तो केवल रोटी माँगते रहे
किसी ने दी, किसी ने नहीं
भीख माँगना तुमने पेशा भी नहीं बनाया
केवल इसे नियति माना
लोगों के सामने
गिड़गिड़ाते हुए हाथ पसारना
थोड़ा सुधार भी अगर कर लेते
भीख माँगते तो
आज तुम्हें
रोटी माँगने की जरूरत नहीं पड़ती
बहुत कुछ वैसे ही मिल जाता।

आलेख

संस्कृति और साहित्य का अन्तर्संबंध

डॉ. अमर सिंह बधान,
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.,
3150, सेक्टर 24 डी,
चंडीगढ़, मो. 9876301085

यह प्रामाणिक तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति हज़ारों वर्ष पुरानी है, इससे जीवंत और दीर्घ परंपरा का बोध होता है, ऋषियों तथा मुनियों ने इसकी परवरिश की है, यह ब्रह्म की भाँति अवर्णनीय है और अपने गौरव व भव्यता के कारण एक स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए है, जबकि विश्व की अनेक समृद्ध संस्कृतियाँ काल के प्रभाव में विनष्ट हो चुकी हैं। जैविक कोण से देखें तो संस्कृति और सभ्यता जीवन की दो भिन्न प्रेरणाओं को व्यक्त करती हैं। वैसे सभ्यता का संबंध नागरिकता से है और समाज में रहने की योग्यता का भाव भी इसमें निहित है। एक अन्य अर्थ में सभ्यता बाह्मी क्रियात्मक रूप है और इसका विशुद्ध संबंध भौतिक विकास है। लेकिन संस्कृति का संबंध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनःप्रवृत्तियों से होता है। संस्कृति विचारधारा का परिणाम भी है, तभी तो मनुष्य की भाव–धारा और संवेदना इसमें शामिल हैं। फिर अहिंसा, प्रेम, सद्भाव, दया, सत्य, परिग्रह आदि मूल्य भी संस्कृति से सीधे जुड़े हुए हैं। आचार की दृष्टि से देखें तो विभिन्न धर्मावलंबियों और समुदायों में मित्रता होते हुए भी, वे विचार और अनुभूति के धरातल पर एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति कहा गया है। इस संस्कृति में यहाँ के निवासियों के भाव, विचार, संस्कार, संवेदनाएँ आदि शामिल हैं।

मनोवैज्ञानिक कोण से देखें तो संस्कृति मनुष्य की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है। मानव व्यवहार, शील, क्षमा, सत्यनिष्ठा, धैर्य, सहनशीलता, दया, प्रेम आदि सांस्कृतिक गुण हैं। प्रतिभा और सांस्कृतिक गुण भौतिक समृद्धि से कहीं ऊँचे हैं। मिसाल के तौर पर रामकृष्ण परमहंस, निजामुद्दीन औलिया, रामानंद, कबीर और स्वामी दयानंद के पास भौतिक सुविधाएँ एवं आर्थिक संपन्नता नहीं थी, लेकिन उनके पास अमूल्य सांस्कृतिक निधि थी। संस्कृति का जो उत्स उनके पास था, उसी की शीतल धारा में भारत की चारों दिशाएँ आप्लावित हुईं। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि वृत्तियों का नियमन सांस्कृतिक सूत्रों से ही किया।

गौरतलब है कि विश्व की किसी भी संस्कृति में सामासिकता नहीं है। यह गुण भारतीय संस्कृति में है और इसने विभिन्न संस्कृतियों को अपने स्वभाव में समन्वित करने में अद्भुत प्रतिभा और लचीलेपन का परिचय दिया है। भारतीय संस्कृति के प्रवाह में आर्य, अनार्य, द्रविड़, शक, हूण, यवन, पठान, तुर्क, मुग़ल, अंग्रेज़ आदि ने अपनी–अपनी उपधाराओं के जल मिलाए, फिर भी पुण्य भागीरथी की तरह इसकी मूलधारा अविच्छिन्न है। इधर इसमें पश्चिम का विराट प्रवाह भी आ मिला है, लेकिन भारतीय संस्कृति महासागर है, संसार की तमाम संस्कृतियाँ इसमें समाहित हो गई हैं। इसका निजत्व, स्वभाव, मौलिक रंग, प्रेरक तत्त्व और उदारवादिता में कोई कमी नहीं आई है। आश्चर्य नहीं कि पश्चिम के कई देश भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की ओर लौट रहे हैं। पहाड़ों, हाथियों और साँपों का प्रदेश समझनेवाले ये अतिविकसित देश अपनी सांस्कृतिक रुग्णता के इलाज के लिए आज भारतीय संस्कृति को अपना वैद्य माने हुए हैं।

इसमें भी दो राय नहीं कि भारतीय संस्कृति प्रारंभ से ही प्रगतिशील रही है, यह असाम्प्रदायिक है, इसमें ममत्व और अखिल भारतीय भावना है। आचार्य शंकर ने भारत के चार कोनों पर चार पीठों की जो स्थापना की, उसके पीछे भी यही भावना थी। इसी भावना के वशीभूत होकर अयोध्या के राम रामेश्वरम् में शिव की उपासना करते हैं। भारतीय संस्कृति का यह समन्वित रूप संस्कृत भाषा के माध्यम से रामायण, महाभारत, गीता, कालिदास, भवभूति, भास आदि के काव्यों और नाटकों के ज़रिए बार–बार व्यक्त हुआ है। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' को पढ़कर उल्लसित मनोभाव से कहा था, 'इस नाटक में स्वर्ग और धरा का उदात्त सम्मिलन है।' बिना शक यह कथन समूची भारतीय संस्कृति और साहित्य की श्रेष्ठता की ओर संकेत है। फिर साहित्य भी तो सत्य के साथ शिव और सौन्दर्य का समन्वय करता है। कहना न होगा कि भारतीय सांस्कृतिक स्थिति का परिमार्जन और सौष्ठवयुक्त रूप हमें संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी साहित्य के माध्यम से भी प्राप्त होता है। आध्यात्मिक मूल्य, मानव मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, मानव प्रेम, उच्चतम सत्य का अस्तित्व, धर्म, कर्तव्य और शील सूर, तुलसी, जायसी, मीरा आदि के काव्य में चरमोत्कर्ष पर है। बुद्ध, शंकर, भारतेन्दु, गाँधी और निराला ने सांस्कृतिक धरातल पर समाज को विशेष दिशा में गति प्रदान की।

साहित्य, संस्कृति का सुरक्षा कवच होता है और संस्कृति के विकास, प्रचार व प्रसार में अपनी सशक्त भूमिका निभाता है। सांस्कृतिक मूल्यों से परहेज़ करनेवाली तथा अनैतिकता का स्वागत करने वाली कृतियों को समय की बरसात में धुलने में देर नहीं लगती। अकविता के नाम पर नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की अनदेखी करके नारी के भूगोल के निकष पर रचित कविताएँ श्रेष्ठ काव्य साहित्य का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकीं। अकविता के कवि विशेष के जागरूक मन में विचार की जो वैयक्तिक प्रक्रिया चली, वही रचना–प्रक्रिया बनी रही। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि साहित्य द्वारा विचारों का समाजीकरण होता है, उदात्तीकरण होता है और एक सीमा के बाद इनका वैश्वीकरण भी होता है।

यह भी सच है कि विचार जगत् में नेतृत्व करनेवाले मनीषियों की व्यक्ति चेतना समाज द्वारा स्वीकृत होकर समाज चेतना बन जाती है और वह आगे चलकर सामाजिक संस्कृति को रूप देती है। फिर अनेक सामाजिक संस्कृतियों के योग से सामासिक संस्कृति का स्वरूप सामने आता है। इसका प्रमाण सरहपा, स्वयंभू, पुष्पदंत, अब्दुल रहमान, मुल्ला दाऊद, विद्यापति, चंदबरदाई, जगनिक, अमीर खुसरो आदि की साहित्यिक रचनाओं में अनायास मिल जाता है। यह विभिन्न संस्कृतियों के मिलन का काल था। इस दौरान संस्कृतियाँ एक–दूसरे से मिलीं और उनके बीच सह–अस्तित्व की स्थिति बनी। सूफ़ी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास किया। काव्य के माध्यम से भावात्मक एकता का यह प्रयास हिन्दी भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। 'रामचरितमानस' स्वयं में एक उच्चकोटि का काव्य है। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है–'इसमें गृहस्थ और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भाव और चिंतन का समन्वय है।'

आगे चलकर छायावादी कवियों ने भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृतियों तथा व्यक्ति और समाज का समन्वय किया। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण है, तो पंत की 'स्वर्ण

किरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि कृतियों में भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय है। महादेवी की 'आँसू' में व्यक्तिगत निराशा एवं विश्व वेदना का संतुलन है, तो प्रसाद की 'कामायनी' में नारी–पुरुष का, धर्म–विज्ञान का, शास्त्र–लोक का और हृदय–बुद्धि का संतुलन है। दिनकर की कविता में संवेदना और विचार का सुन्दर समन्वय है। युद्ध और त्याग तथा करुणा और यातना का समन्वित रूप सियारामशरण की 'उन्मुक्त' रचना में देखा जा सकता है। 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में हिन्दू–मुस्लिम दोनों हृदयों को एक–दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया है।

यदि गहराई से देखा जाए तो आधुनिक भारतीय साहित्य में सामासिक संस्कृति के सर्वाधिक तत्त्व उपन्यासों में मिलते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'पुनर्नवा' उपन्यास में पुरातन और नवीन संस्कृतियों के संतुलित संबंध सूत्र चित्रित हुए हैं। भगवतीचरण वर्मा के 'प्रश्न और मरीचिका' में विभिन्न जातियों और वर्गों का समन्वय है। भीष्म साहनी के 'तमस' का चित्रफलक हिन्दू–मुस्लिम सांस्कृतिक संघर्ष है। नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', यशपाल का 'मनुष्य के रूप' एवं 'झूठा सच', प्रभाकर माचवे का 'किसलिए' आदि उपन्यास खंडित सांस्कृतिक मूल्यों को जोड़ते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मीनारायण लाल कृत उपन्यास ' शृंगार' में महाबलीपुरम् के मछुआरों और मध्यप्रदेश के बस्तर के आदिवासियों की दो भिन्न सांस्कृतिक इकाइयों का स्वस्थ मिलन है। शंभुनाथ आशुतोष कृत 'आ अब लौट चलें', 'संघर्ष और सीमा', जमुनादास अख़्तर का 'कश्मीर की बेटी', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी, शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है', मधुकर सिंह का 'सबसे बड़ा छल', अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल', 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुरदाघर' आदि उपन्यास सांस्कृतिक जीवन के मूल्यांकन की दृष्टि से उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

इसके अतिरिक्त तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, बाँग्ला, उड़िया, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में रचे गए उपन्यासों में भी सामासिक संस्कृति के प्रखर तत्त्वों को देखा जा सकता है। मु. वरदराजन का 'मण्कुडिसै' (मिट्टी की झोंपड़ी), नील पद्मनाभन का 'तलैमुरैकल' (परंपराएँ), शिवशंकर पिल्ले का 'चेमीन,' नानक सिंह का 'चिट्टा लहू' (सफेद खून) आदि उपन्यासों में नई और पुरानी पीढ़ी के मध्य सांस्कृतिक मूल्यों के अन्तरालों, वैचारिक संघर्ष एवं मानवीय संवेदनाओं को उच्च सीमा पर अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आपसी भाईचारा, सौहार्द, प्रेम, आत्मीयता, मानवीय संवेदन, सत्यनिष्ठा, नैतिकता, सद्भावना आदि मूल्यों के सुरक्षण में साहित्य ने अनूठी भूमिका निभाई है। जब भी पश्चिमी समाज ने हमारी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावनाओं पर प्रहार किया, सामासिक संस्कृति ढाल बनकर खड़ी हुई और साहित्य ने भी तनकर और जमकर मोर्चाबंदी की। मनुष्य है तो विचार है, विचार है तो साहित्य है और साहित्य है तो सांस्कृतिक मूल्य सुरक्षित है। यही संरक्षण विसंरचना में से भी संरचना–निर्माण के सूत्र खोज लेता है।

आलेख :

घंटी बज गई

प्रकाश कुमार अग्रवाल
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
खड़गपुर
मो.–9932937094

पढ़ाई–लिखाई में कमजोर एक लड़का पैसे और पैरवी से विद्यालय में शिक्षक की नौकरी पा जाता है। उससे जुड़े जितने भी होनहार दावेदार थे, सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं। लेकिन सब उसके भाग्यवान होने और अपने को भाग्यहीन मानकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। जब उसने अपने विद्यार्थी जीवन में कभी ज्ञानार्जन नहीं किया था, तो अब क्या करता, लेकिन अब उसके सामने समस्या ज्ञान देने की थी, जो उसके लिए एक बड़ी चुनौती थी। उसने कई दिन तो इधर–उधर की बातों से विद्यार्थियों को बहला दिया। फिर कुछ दिन उसने विद्यार्थियों कौ नैतिक ज्ञान से उलझाए रखा। काफी समय बीत जाने पर भी जब कक्षा में विषय की पढ़ाई शुरू नहीं हुई, तब एक दिन कक्षा का एक विद्यार्थी बोल पड़ा–

'सर! परीक्षा आनेवाली सेलेबस...!

शिक्षक सकपका कर कहते हैं–'हाँ, हाँ, निकालो–निकालो बोलो–क्या पढ़ना है?'

(वही विद्यार्थी) सर! कुछ भी नहीं हुआ है।

(अनिच्छा से) 'अच्छा–अच्छा, तुमलोग इतने दिनों से बोले नहीं। लाओ किताब दो।'

एक विद्यार्थी किताब देता है। किताब लेकर सबसे पहले वे मुँह में भरी पान की पिक को कक्षा की एक ओर थूक देते हैं और एक कहानी निकालकर उसे पढ़ना शुरू कर देते हैं। कहानी–वाचन पर झुकी उनकी दृष्टि समापन के बाद ही उठती है। शंकित भाव से वे विद्यार्थियों से पूछते हैं–'समझ में आया?'

एक दूसरे का मुँह ताकने के बाद विद्यार्थी–'हाँ सर' कह देते हैं।

शिक्षक फरमान सुनाते हुए कहते हैं–'अब मैं तुमसे इससे संबंधित प्रश्न करूँगा, जो उत्तर नहीं देगा, उसकी पिटाई होगी और उसे कान पकड़कर पूरे क्लास भर खड़ा रहना होगा।'

सब विद्यार्थी सकपका जाते हैं। उनकी सिट्टी–पिट्टी गुम हो जाती है। सब उस विद्यार्थी का मुँह देखने लगते हैं, जिसने शिक्षक से पढ़ाने के लिए कहा था। वह विद्यार्थी भी सहमा हुआ सा बैठा था। वह जानता था कि उसपर दोहरा आघात होनेवाला है। वह मन–ही–मन ईश्वर को याद करने लगा। ईश्वर ने भी उसकी सुनी और घंटी बज गई।

समीक्षा :

जीवन से उधार

(काव्य संग्रह)

रणजीत कुमार सिन्हा
मिदनापुर (प.बंगाल)
मो.–9434153501

प्रमोद बेडिया नाम पश्चिम बंगाल में ही नहीं भारतवर्ष में किसी परिचय का मोहताज नहीं है। हिन्दी साहित्य को समृद्धि दिलानेवालों में इनका नाम आता है। साहित्य एवं समाज के प्रति समर्पण का भाव इनके व्यक्तिगत जीवन एवं लेखन में भी दिखलाई पड़ता है।

शहरी चमक–दमक से दूर बंगाल के पुरुलिया जैसे अंचल में रहकर, जिस तरह से वे आमजनों के यथार्थ का चित्रण करते हैं, वह अन्य के लिए असंभव है। बेडिया जी स्वयं कहते हैं–''कविता संशय ही है। मैं भी संशयग्रस्त ही हूँ, अपनी कविताओं के बारे में।'' यह बात एक ईमानदार कवि ही कह सकता है।

'जीवन से उधार' वरिष्ठ कवि प्रमोद बेडिया का चौथा काव्य–संग्रह है। इसमें कुल 34 कविताएँ हैं। इससे पहले तीन कविता संग्रह क्रमश: 'पृथ्वी पर पानी की तरह', 'शहर में कविता' और 'एक सदा आती तो है' प्रकाशित हो चुके हैं।

बेडियाजी ने पहली कविता 1964 में लिखी, पहली कहानी कलकत्ता से प्रकाशित अभिनय में छपी–1964 में, फिर साप्ताहिक हिन्दुस्तान में पहली कविता–1968 में, साहित्यिक, सांस्कृतिक और नाटक में सक्रिय 1977 में, समवेत का प्रकाशन 3–4 अंकों में दुकान उठ गई।

बेडियाजी की रचनाएँ–अभिनय, परिवेश, साक्षात्कार, विपक्ष, गवाह, संबोधन, वसुधा, वर्तमान साहित्य, पहल, कादम्बिनी, बया, वागर्थ आदि में प्रकाशित हुई। बंगाल से उल्लेखनीय अनुवाद वसुधा और पहले में छपे।

प्रमोद बेडिया जी तथाकथित वामपंथी नहीं, वे घोषित वामपंथी एवं कर्मठ राजनीतिक कर्मी भी रह चुके हैं। उनका विचार, चिंतन आजकल के तथाकथित वामपंथियों से बिल्कुल भिन्न है। वे जमीनी स्तर के कार्यकर्ता थे, इसलिए उनकी कविताओं में आमजन और खासजन का फर्क साफ दिखलाई पड़ता है।

एक छोटे–से कस्बे के साहित्यकार, कवि, लेखक की रचना कर्म पर आलोचक बहुत कम ध्यान देता है। बेडिया जी को न तो आलोचकों से कोई शिकायत है, न वे अन्य कवियों की तरह किसी भेड़चाल या नंबर प्रतियोगिता का हिस्सा बनना चाहते हैं। वे तथाकथित कवियों की तरह नहीं हैं।

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने 'पहले से अधिक बेधक जरूरी' शीर्षक में बेडिया जी के कवि कर्म का चित्रण करते हुए लिखते हैं–''प्रमोद बेडिया की कविताओं का व्यंग्यबोध अलग से आकृष्ट करता है।''' 'कस्बे का कवि' शीर्षक उनकी कविता की इन पंक्तियों को गौर से पढ़िए और समकालीन कवियों के आचरण पर विचार कीजिए–

कस्बे के नगर सेठ की तो कोई हस्ती ही
नहीं थी जिसका वह कवि विरोध करता रहा
वह बेचारा उसे ही साम्राज्यवाद का सबसे
बड़ा प्रतीक समझकर सौऔं कविताएँ लिख
चुका था और उसका बाल भी उखाड़ नहीं पाया था।

हमारे देश में साम्राज्यवाद के विरोध में जितनी अधिक कविताएँ लिखी जा रही हैं, जो लिख रहे हैं, वे भी किसी न कसी रूप से इस साम्राज्यवाद के तलवे सहलाते नजर आते हैं। सिर्फ मौका मिलना चाहिए।

आलोचक एवं संपादकों में उभरते दोगलापन का चित्रण बेडियाजी 'कस्बे के कवि की मौत' शीर्षक कविता में करते हैं–

''वह कस्बे का चुतिया कवि
अंतत: बिना आवाज के मारा गया
उसे महानगर की रस्में मालूम नहीं थी
कि जबतक बड़ा अघाया खाया धाया
खंकारता डकारता संपादक मय अपने
आलोचक समूह द्वारा उसे क्रांतिकारी
घोषित न कर दे तानाशाह को खुजली
तक नहीं, नहीं होती वह वैसे ही उपस्थ
खुजाते हुए अध्यादेश जारी करता रहता है
सदी के नायकों के साथ हँसता रहता है।''(पृ. 13)

'सभी को मरना है एक दिन' शीर्षक कविता में, समाज में बढ़ती धार्मिक उन्माद और खूनी खेल को देखकर कवि अपने आपको रोक नहीं पाता है–

''कितनी बार कहा माँ को इतने पूजापाठ
क्यों करती हो, देखती नहीं बाहर सड़क पर
किस तरह लोग ईश्वर और खुदा की लड़ाई
लड़ते हैं
वो हँसने लगी, बोली–अरे परमोद!
ब लोग तो ईश्वर तानी थोड़ई लड़ ह ब लोग
पापी है, बान भगवान को पत्तोइ कोनी रे।'' (17)

समाज में चुप्पी साधना भी घातक है। चुप्पी बदलाव नहीं ला सकता। लेकिन लोग कुछ बोलने से डर रहे हैं, अभिव्यक्ति की आजादी भी अब खामोश है। आज आदमी केवल सोच रहा है, कर कुछ भी नहीं रहा। 'खामोश समय' शीर्षक कविता में बेडियाजी लिखते हैं–

''यह एक खामोश समय है
खामोश, कुछ सोचता हुआ
समय है, उसे सोचने दें
वह उन घटनाओं के बारे में भी
सोचता होगा
जो नहीं घटनी चाहिए थी
यानी दुर्घटना हो गई
लोग मारे गये, बच्चे मारे गये
स्त्रियाँ मारी गईं
अस्मिताएँ मारी गईं
वह उन लोगों के बारे में भी
सोच सकता है
जो अच्छे लोग–से दिखते हैं, लेकिन
बुरे लोग हैं
सोचता होगा उनके मुखौटे
कैसे उतार फेंके।''(19)

प्रमोद बेडिया की कविताओं में अकृत्रिमता या दिखावेपन नहीं है। इनकी कविताओं में शोषित,दमित, पीड़ित लोगों के कवि के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। जिस तरह का जीवन बेडिया स्वयं जी रहे हैं, बंगाल के लालमाटी और पिछड़े अंचल में निवास कर रहे हैं, वहाँ का यथार्थ चित्र को शब्दों में व्यक्त करते नजर आते हैं।

'कुर्सियाँ' शीर्षक कविता में कवि ने कुर्सी माहात्म्य के माध्यम से

संबंधों को पुनर्परिभाषित किया। यह कैसी विडम्बना है कि रिश्तों को परिभाषित करने के लिए कवियों को बेजान चीजों का आश्रय लेना पड़ता है। यह बात राजनीति में भी आज भी लागू है।

विषयांतर हो गया क्षमा करें–

''तो यह कुर्सी मैं बचपन से देख रहा हूँ
जगह की कमी की वजहें भी होती हैं
उसे इधर–उधर करने में लेकिन वह बेची नहीं गई
कबाड़ की तरह बकायद अपना हक जमाए हुए है
पूरे समय पर जैसे कोई इतिहास है
जिसे मिटाया नहीं जा सका।''(22)

बदलते समय में सब कुछ बदलता नजर आ रहा है। आज लोग मतलब से ही संबंध बनाते हैं। 'फूलबाज' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं–

''फूल प्रेम की पहली अभिव्यक्ति है
जब कोई निश्चित हुए बगैर ही
अपनी प्रेमिका को जैसे सब कुछ दे रहा है
देता है फूल यह अलग है कि वह

लेकिन यह तो तय है कि
फूलों की प्रेम में भूमिका
ठीक उतनी तो है ही जितनी
आग में माचिस की तीली की होती है।'

आगे कवि फूल को राजनीति रंग में कैसा प्रयोग हो रहा है, इसका जिक्र करते हुए लिखा है–

''यह सबसे भयानक हत्यारी और युद्धकालीन
भूमिका है जिसका अंत उसकी कब्र पर
फूल डालने से भी हो सकता है
कुल मिलाकर महोदय
निष्कर्ष यह हुआ कि दुनिया फूलों की नहीं
फूलबाजों की है।'(25–28)

प्रमोद बेडिया वर्तमान समय की क्रूरता का चित्रण करते हुए अपनी कविताओं में यह भी दिखाते हैं कि सभ्यता के विकास के साथ–साथ क्रूरता का भी व्यापक विकास हुआ है। यहाँ पर हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबंध 'कविता क्या है?' 'याद आ रहा है' सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मनुष्य के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गये, त्यों–त्यों उसे मूल रूप बहुत कुछ आच्छन्न होते गये। बेडियाजी का 'मारे जाना' शीर्षक कविता वर्तमान समय का शोकगीत है। कारण इस समय जो हालात है, उसका चित्रण वामपंथी कवि प्रमोद बेडियाजी करते हैं–

''सब सरकारी है
सब सरकार का है
हम भी सरकार के हैं
भाषा भी सरकार की है
हर आदमी सरकार का नौकर है
रोटी भी सरकार की, दाल भी सरकार की
चूल्हा भी सरकार का, वृक्ष भी सरकार का
लकड़ी भी सरकार की, जलाएँ या तुम्हें कर दे
संसद भी सरकार की, सड़क भी सरकार की
आकाश भी सरकार का, पृथ्वी भी सरकार की
हम तुम भी सरकार
के हो जाएँ तो बेहतर है
वरना मारे जाएँगे।''(27)

लेकिन अब सरकार तो सभी चीजों को गैरसरकारी या पूँजीपतियों के हाथ में सौंपकर खुद मुक्त रहने के उपाय पर आतुर है। इस तरह प्रमोद बेडिया का यह काव्य संग्रह उनके पहले के तीन काव्य संग्रह की अगली कड़ी है। कवि की तमाम कविताओं में प्रेम पत्र, जलाने के बाद, राजे राजे होते हैं, प्रेमिकाओं के नाम पत्र, पोस्टकार्ड आदि में बलदते समय का सौंदर्यबोध साफ–साफ दिखलाई पड़ता है।

सरकार बदलती है, लेकिन आमतौर पर आमजनों के जीवन में क्या कोई खास बदलाव होता है?कवियों और उनकी कविता तथा पुरस्कार एवं तालमेल पर व्यंग्य करते हुए 'अंततः कविता' शीर्षक कविता में प्रमोद बेडिया जी लिखते हैं–

''किसी पार्टी की विजय हुई थी
उसके इस उत्सव में मै चला गया था
कि कविता पढ़ूँगा
वहाँ से धक्का देकर निकाल दिया गया

सबने मुझे कोने में ले जाकर समझाया
कि अरे, ऐसे कविता थोड़ेई होती है
हमें सोचने दो, उसके पसीने को कविता में
ढालने दो और हम दोनों को वापस भेज दिया
वहाँ से लौटने पर मुझे गली के मोड़ पर
वह औरत दिखी पहली बार
जिसपर मैं कई कविताएँ लिखा चुका था
बगल के हॉल में कोई कवि इस साल के अकादमी
पुरस्कार से सम्मानित हो रहा था जिसका
स्त्रियों के प्रति सरोकार प्रसिद्ध था।''(85)

इस तरह बेडिया जी की कविताओं में हमें कस्बे से लेकर महानगर तक का यथार्थ चित्र और तथाकथित कवियों का चरित्र का चित्रण भी साफ–साफ दिखाई पड़ता है।

ग़ज़ल

सलिल सरोज
नई दिल्ली

वो तुम्हें झूठ पहले रोकर कहेंगे
फिर सीने पर खड़े होकर कहेंगे
आला ईमान के मालिक हो तुम
वो भरे बाज़ार तुम्हें जोकर कहेंगे
तुम्हें खुद अपना भगवान कहेंगे
और चुनाव के बाद नौकर कहेंग
कमाते हो तो हीरे–जवाहरात हो
बेजाँ बुढ़ापे में तुम्हें कंकर कहेंगे
इश्क करने की रवायत बदल लो
वर्ना सनम राह की ठोकर कहेंगे
तुम्हीं तो हो अमन चैन के दुश्मन
हर घर में नफरत बो कर कहेंगे
कब करोगे हमारे दिल की बात
'साहब' कहते हैं सोकर कहेंगे।

आलेख

भाषा का महत्व

आचार्य बलवन्त
विभागध्यक्ष हिन्दी
कमला कॉलेज आफ मैनेजमेंट स्टडीस
बेंगलूर, (कर्नाटक)
मो. 9844558064

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में न तो किसी सामाजिक परिवेश की कल्पना की जा सकती है, न सांस्कृतिक उत्थान और राष्ट्रीय प्रगति की। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान और इतिहास का आधार भाषा ही है। भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम ही नहीं, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहिका भी होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके शब्द परिवेश की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से संपृक्त होते हैं। भाषा की प्रकृति को पहचानकर ही उसे प्रवाह को अक्षुण्ण बनाया जा सकता है।

लार्ड मैकाले भाषा के महत्व को भलीभाँति समझता था। इस तथ्य की पुष्टि मैकाले द्वारा 2 फरवरी सन् 1835 को ब्रिटिश संसद में दिये गये उसके व्याख्यान से ही जाती है, जिसमें उसने कहा था–''मैंने भारत के ओर–छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जबतक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरुदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं प्रस्तावित करता हूँ कि भारत की प्राचीन शिक्षा–पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगे कि जो विदेशी और अंग्रेजी में है, वह उनके आचार–विचार से अच्छा एवं बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा वे एक पराधीन कौम बन जायेंगे, जो हमारी चाहत है।'' लार्ड मैकाले की शिक्षानीति भारतीयों को उनकी भाषा से पृथक् कर वैचारिक रूप से उन्हें पंगु बनाने की थी, उनके आत्मविश्वास को कमजोर करना था, जिसे हम नहीं समझ सके।

देश के गणतंत्र बनने के बाद भाषा भी अहमियत हमें समझाने की कोशिश सोवियत रूस ने भी की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को दृढ़ करने के उद्देश्य से एक भारतीय राजनयिक को सोवियत रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया, जहाँ उसने अपना कार्यभार ग्रहण का पत्र अंग्रेजी में सौंपा। किसी भारतीय भाषा में न होने के कारण वहाँ की सरकार ने उस पत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और याद दिलाया कि अंग्रेजी गुलाम भारत की भाषा थी, अंग्रेजी में पत्र प्रस्तुत करना उसी गुलामी का प्रतीक है। फिर किसी गुलाम देश के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता। भाषा के सवाल पर सोवियत रूस की यह फटकार भाषा के प्रति हमारी उदासीनता पर करारा प्रहार है।

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है–प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गयीं। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा। केवल एक बच्ची ही राष्ट्रगान सुना सकी। यह देखकर महारानी प्रसन्न हो गयी और उस बच्ची से कुछ माँगने के लिए बोलीं। बच्ची के मुँह से अचानक ही ये शब्द निकल पड़े–'हमारी शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा फ्रेंच बना दीजिए।' इसे कहते हैं अपनी भाषा के प्रति अनुराग।

भाषा की अस्मिता का प्रश्न आज भी ज्यों का त्यों पड़ा है। अंग्रेजी शिक्षानीति के चलते न केवल हिन्दी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाएँ हाशिये पर आ गयी हैं। इन दिनों भारतीय जीवन में व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो अंग्रेजी की देन है। खान–पान, रहन–सहन, पठन–पाठन एवं विचार–विमर्श ही नहीं, संबोधन एवं अभिवादन की भाषा भी अंग्रेजी ही हो गयी है। बाजारवादी शक्तियाँ विज्ञापन के माध्यम से हमारे संस्कार को बिगाड़ने पर तुली हैं। किसी समाज के संस्कार को बिगाड़ने के तमाम कारणों में व्यक्ति की बोलचाल व व्यवहार की भाषा को बिगाड़ देना भी मुख्य है। आजकल के विद्यार्थियों में अपनी भाषा के प्रति जो अनुराग होना चाहिए, उसका अभाव है। प्रायः देखने में यही आता है कि अध्यापक और अभिभावक हिन्दी भाषा पर ध्यान कम ही देते हैं। आज के युवा कैरियर बिल्डिंग के नाम पर अपनी भाषा से विमुख होकर संस्कृति और सभ्यता से भी दूर होते जा रहे हैं।

हिन्दी के प्रति नवयुवकों की जो उदासीनता है, उसका एक कारण हिन्दी को रोजगार की भाषा न बनाया जाना भी है। हिन्दी को रोजगार से जोड़े बिना वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में हिन्दी के प्रति वह आकर्षण भाव नहीं जाग्रत किया जा सकता, जिसकी हम आशा करते हैं।

भाषा के प्रश्न को गंभीरता से लेते हुए उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एन. वेंकट चलैया और न्यायमूर्ति एस. मोहन की खंडपीठ ने यह निर्णय दिया था कि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसलिए कि मातृभाषा में दी गयी शिक्षा ही संस्कृति एवं परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। संविधान के अनुच्छेद 350 ए के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटाने का उत्तरदायित्व राज्यों तथा स्थानीय निकायों का है। कर्नाटक सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को स्वीकार कर एक साहसिक व सराहनीय कार्य किया, हालाँकि इसके क्रियान्वयन का अंग्रेजी मानसिकता के अभिभावकों ने जोरदार विरोध किया था, पर सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति के सामने उनकी चल न सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत यह महसूस किया गया कि एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज एवं एक राष्ट्रगान की भाँति देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी आवश्यक है; क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूँगा होता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। हिन्दी को संपूर्ण भारत की व्यावहारिक भाषा बनाने के अभियान में गाँधीजी का योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा के प्रति अपने निश्चय को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है–''हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम

किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को नुकसान पहुँचाना या मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतों से पारस्परिक संबंधों के लिए हम हिन्दी सीखें। ऐसा करने से हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषाराष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते–बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो।'' सन् 1910 में गाँधीजी ने कहा था–''हिन्दुस्तान को अगर सचमुच राष्ट्र बनान है तो राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने हिन्दी में भाषण देते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी–''हिन्दी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है।'' एक भाषा, एक लिपि विषयक इसी अधिवेशन में सम्मत से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि हिन्दी भाषा और देवनागरी का प्रचार–प्रसार देश के हित एवं एकता की स्थापना हेतु होना चाहिए। इस प्रस्ताव का समर्थन तमिल भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार रामास्वामी अय्यर ने किया था। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समरसता को बनाए रखने में राष्ट्रभाषा की महत्ता को उन्होंने अच्छी तरह से निरूपित किया है–'हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुँचाना है। जिस प्रकार हमारी आजादी को जबर्दस्ती छिननेवाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अंग्रेजी भाषा को भी यहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए। देवनागरी के समान सरल, जल्दी सीखनेयोग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं। उर्दू और रोमन से भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसी की देवनागरी लिपि में।''

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन को राष्ट्रीयता का स्रोत मानते थे। उनका कहना था–''कोई विदेशी भाषा हमारे देश की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के विकास के लिए स्वभाषा अनिवार्य है।'' उनके स्वभाषा का आशय हिन्दी से ही था। टंडनजी ने केवल हिन्दी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक बनाए जाने के प्रबल पक्षधर थे। भाषा के साथ–साथ उसके सांस्कृतिक विकास पर भी उनका बल था। क्योंकि भाषा की संस्कृति ही उसे अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा संबंध है, संस्कृति शरीर है तो भाषा उसका प्राणतत्व।

इस बात को पुनः दोहराना चाहूँगा कि राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव स्वतत्रता प्राप्ति के बाद से ही किया जाने लगा था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के प्रयासों से ही सितम्बर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा के विषय पर विचार–विमर्श हुआ। 12, 13 एवं 14 सितम्बर 1949 में सम्पन्न इस तीन दिवसीय सम्मेलन में उपस्थित 71 सदस्यों ने हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया एवं शासकीय विभाग हेतु भारतीय अंकों में अंतर्राष्ट्रीय रूप को अपनाने की बात तय हो गयी। हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा और उसका समर्थन श्रीशंकर राव ने किया, जो हिन्दी भाषी थे।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी संघ की सह–राजभाषा के रूप में जारी रखने और उसके बाद हिन्दी को पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना बनी। पर ऐसा हो नहीं सका। नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थपरता के चलते भाषा–प्रेमियों की हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने की चाहत भेदभाव की भेंट चढ़ गयी। मतों के गुणा–गणित के आधार पर अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों ने जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद एवं क्षेत्रवाद की भाँति भाषा को भी वाद–विवाद का विषय बना दिया, जिसमें उलझकर हिन्दी को उसका गौरव दिलाने का चिर–प्रतीक्षित स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी देश की एक राष्ट्रभाषा का न होना देश की अस्मिता और आत्मगौरव के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है?

वह भाषा जो वन्दे मातरम् एवं भारतमाता की जय के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो, वह भाषा जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधरों का क्रांति गीत बनकर व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान करती रही हो, वह भाषा जो देश के विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें आपस में जोड़कर रखने में समर्थ हो। जो भाषा देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूलाधार हो, जो भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी–पढ़ी, समझी और सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिन्दी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उद्गार दर्शनीय है–''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाज़मी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो उसे एक भाषा का एक आधार लेना पड़ेगा।''

अंग्रेजों ने भारत को कई स्तरों पर कमजोर करने की साजिश रची थी। हिन्दी और उर्दू के सवाल को हवा देकर सांप्रदायिक वातावरण को बिगाड़ने की उनकी कूटनीतिक चाल सफल भी हुई। सन् 1948–49 में भारत की 14 भाषाओं में 'हिन्दुस्तानी' को प्रवेश उनकी कुटिल मंशा का ही प्रतिफल था। वह हिन्दुस्तानी समझौते की भाषा बनकर रह गयी, जो बोलचाल के लिए उपयुक्त तो थी, पर उसमें साहित्यिक सामर्थ्य का अभाव था।

भारतीय संविधान लागू होने पर हिन्दी को राजभाषा के रूप में मात्र घोषित कर 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी को राजभाषा का मान देते रहना और आशा रखना की एक न एक दिन हिन्दी राजभाषा का गौरव प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है। केन्द्रीय गृहमंत्रालय द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 3/1 के अंतर्गत शासकीय प्रयोजनों में हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में आगे भी जारी रखने का निर्णय लिया गया, फिर राजभाषा अधिनियम की धारा 3/2 के अंतर्गत यह व्यवस्था दे दी गई कि जबतक भारत के एक भी राज्य की सरकार हिन्दी को अपने राज्य की राजभाषा के रूप में अस्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी, तबतक हिन्दी संघ की राजभाषा के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकती। राजभाषा अधिनियम के इस सशर्त समझौते ने हिन्दी को संघ की सशक्त राजभाषा बनने के सारे रास्ते ही अवरुद्ध कर दिये। इसलिए कि दक्षिण भारत का एक राज्य तमिलनाडु हिन्दी का प्रबल विरोधी है ही और पूर्वोत्तर स्थित नागालैंड राज्य अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा के रूप में अपना चुका

है।

मैकाले द्वारा अपने होम सेक्रेटरी को लिखे गये पत्र की कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसने अत्यन्त विश्वास के साथ कहा था—''मैं नहीं कह सकता कि भारत देश राजनीतिक रूप से आपके अधीन रह पायेगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकेगा।'' उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके।

दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रश्न पर इसकी अन्य भाषाओं को इसके समानांतर खड़ा करने की बार–बार कोशिश की जाती रही है। बार–बार यह झूठी दलील दी जाती रही है कि हिन्दी के राजभाषा बनने से देश की अन्य भाषाओं की अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी, जबकि अस्मिता के संकट का भय देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं की हिन्दी से नहीं, बल्कि और अन्य प्रांतीय भाषाओं व उनकी बोलियों को अंग्रेजी से है।

हिन्दी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है। समय की माँग है कि हम अंग्रेजी की मानसिकता का परित्याग कर भारतीयता के आदर्शों तथा हिन्दी को भारतीय संस्कृति के विकास का संसाधन बनाएँ। भारत को उसका खोया हुआ गौरव तभी प्राप्त हो सकेगा, जब वहाँ का हर पढ़ा–लिखा व्यक्ति अपने कार्य, चिंतन–मनन व आपसी संवाद अपने ही देश की भाषा हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में करें। अपना हस्ताक्षर तो वह अपनी भाषा में ही करे एवं हिन्दी को अपनी पहचान की भाषा बनाए। हिन्दी के प्रति हीन भावना से मुक्ति का मार्ग हिन्दी से निकलेगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हिन्दी के माहात्म्य से संबंधित कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत है–

''जन सामान्य की भाषा हिन्दी
जन–मन की जिज्ञासा हिन्दी
जन–जीवन में रची बसी
बन जीवन की अभिलाषा हिन्दी
सेवा भाव सिखाती हिन्दी
सबके मन को भाती हिन्दी
सबके दिल की बातें करती
सबका दिल बहलाती हिन्दी
स्नेह, शील, सद्भाव, समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी।''

चिंतन

वैदिक संस्कृति की ओर हमें लौटना होगा

रंजना मिश्रा
कानपुर (उ.प्र.)

जब हम प्रकृति की अवहेलना करने लगते हैं तो वह विवश होकर हमारे ऊपर अनुशासन करने लगती है। वेदों को दुनिया के इतिहास का पहला लेखक–दस्तावेज माना जाता है और इन्हीं वेदों में से एक है अथर्ववेद। इसमें कहा गया है कि पृथ्वी हमारी माता है और हम सभी प्राणी उसके बच्चे, ऋग्वेद के मंत्रों द्वारा यह प्रार्थना की जाती है कि मनुष्यों पर प्रकृति माँ का आशीर्वाद सदैव बना रहे और पृथ्वी के संसाधन सदैव भरे रहें, रामचरितमानस में कहा गया है कि हमारा शरीर पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन पाँच तत्वों से मिलकर बना है। प्रकृति का हमारे जीवन से गहरा संबंध है, इसीलिए हमारी संस्कृति में पृथ्वी को माँ माना जाता है। भोजन से पहले मंत्र पढ़कर ईश्वर का आह्वान किया जाता है कि वह भोजन को ग्रहण कर उसे अमृततुल्य बना दे। भारत की सभ्यता में पर्यावरण की पूजा की जाती है। सूर्य, पर्वत, नदी, पेड़ और अन्न ये सभी पूजनीय होते हैं, जानवरों में भी देवता का वास मानते हैं। पर्यावरण के संपूर्ण चक्र का सम्मान करते हैं। इन नैतिक मूल्यों को भूलने की वजह से समय–समय पर प्रकृति हमें अनेक आपदाओं के रूप में दंड देती है, वह समय–समय पर अपने तरीके से पर्यावरण को सुधारने का काम करती है। आज कोरोना वायरस की वजह से फैक्ट्रियाँ के बंद होने और वाहनों के इस्तेमाल में कमी आने से प्रदूषण घट रहा है और पर्यावरण शुद्ध हो रहा है। किसी भी आपदा को हमें एक सबक की तरह स्वीकार करना चाहिए और भविष्य के लिए सचेत होना चाहिए। अभी मौका है कि हम अपनी जड़ों की ओर लौटें। हमारी संस्कृति में पूरी दिनचर्या का एक निश्चित समय तय किया गया है कि किस समय उठना चाहिए, किस समय सोना चाहिए, किस समय खाना चाहिए और क्या खाना चाहिए, किस मौसम में क्या खाना चाहिए, सबका एक पूरा विज्ञान है, इसका हमें पालन करना चाहिए। हमें ठंढी चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए।

नमस्ते करने के लिए जब हम दोनों हाथों को जोड़ते हैं, तो इसमें भी एक विज्ञान छुपा हुआ है। हम जब दोनों हाथ जोड़ते हैं तो बॉडी में राइट साइड सर्कुलेट होनेवाली पॉजिटिव एनर्जी और लेफ्ट साइड सर्कुलेट होनेवाली निगेटिव एनर्जी का तालमेल भी बैठ जाता है।

हम अपने मूल्यों से हाथ धो चुके हैं, इसीलिए आज यह नौबत हो गयी है कि हमें बार–बार हाथ धोने पड़ रहे हैं, हमारी संस्कृति में नीचे बैठकर और चौकी पर भोजन की थाली रखकर खाने की परंपरा थी, इसमें भी कहीं ना कहीं एक विज्ञान छिपा था। आज दुनिया भारत के खानपान के विज्ञान, भारत के आयुर्वेद, भारत के योग को महत्व दे रही है, फिर भी हम अपनी संस्कृति की ओर लौटने को तैयार नहीं हैं।

आलेख

हिन्दी राष्ट्रीयता की संजीवनी है

डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'
भिलाई, मध्यप्रदेश 490001
मो. 9752606036

संपूर्ण देश में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ विविध भाषाओं का संगम है। भारत में 22 भाषाओं का अपना एक राज्य है, अपना एक समाज है, अपना एक साहित्य है, अपनी एक विरासत है, लेकिन इन सबको जोड़नेवाली जो शृंखलाबद्ध अवधारणा है, वह हमारी भारतीय संस्कृति हिन्दी भाषा की अपूर्व विरासत है। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व में एक असाधारण भारत के नाम से जानी जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता विविधता में एकरूपता है, जहाँ अनेकता में एकता है। यह विशेषता सिर्फ भारत में ही है। सिर्फ भाषा की ही बात नहीं रीति रिवाज, पहनने–ओढ़ने, खान–पान, धर्म–कर्म सबमें कुछ न कुछ अंतर है पर अंत में हम सभी भारतीय हैं। यह भारतीयता की गरिमा ही हम सभी को गरिमामय बनाने के लिए पर्याप्त है। राष्ट्रभाषा हिन्दी इसमें एक धागे की तरह अपने कर्तव्य को दर्शाती है और विविध राज्यों की भाषा उस धागे में फूल की तरह पिरोए जाते हैं। तभी भारत एक सुन्दर फूलों के हार के रूप में परिलक्षित होता है । यह हार विश्व के किसी भी कोने में रहने वालों के लिए सर्वोत्तम है। यह दिव्य हार ही हमारी राष्ट्रीयता की पहचान है। गाँधी जी ने कहा है – ''कोई भी देश सच्चे अर्थों में तबतक स्वतंत्र नहीं है, जबतक अपनी भाषा में नहीं बोलता है।''

जिस देश की अपनी भाषा नहीं होती है, वह देश गूँगा है। हमें राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान की प्राप्ति हो गयी है। भाषा भी हमने अपने देश के दिग्गज विद्वानों की सर्वसम्मति से हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। परंतु राष्ट्र भाषा की उन्नति के लिए हमें अथक परिश्रम करना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। आज आवश्यकता है–'अप्प दीपो भव' अर्थात् अपना दीपक हम स्वयं बनें। जिस प्रकार सूर्य की पूजा दीपक की ज्योति दिखाकर करते हैं और गंगा की पूजा, गंगाजल का अर्ध्य देकर करते हैं, उसी प्रकार अपनी भाषा को सर्वश्रेष्ठ बनाने में हमारा परिश्रम आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य में समुद्र के लहरों की भाँति अनेक साहित्यकार अपने प्रबुद्ध मनोवृत्ति को कसौटी की धार में अनवरत घिसते चले आ रहे हैं। हिन्दी साहित्य वास्तव में रागात्मक अनुभूतियों का एक ऐसा अन्वेषण है, जिसकी गतिशीलता में जब हम ज्ञान और बुद्धि का समन्वय कर लेते है, तभी तो हृदय से निकली भावनाएँ कालजयी कृतियों की संरचना करने में समर्पित हो जाती है, ऐसे साधकों की आज भारत में कमी नहीं है।

हिन्दी भाषा–भाषियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे दूसरी भाषा के अनुवादों को पढ़कर ही संतुष्ट न होवें, स्वयं भी दूसरी भाषा को सीखे व उसकी मौलिकता से परिचित हो।

जिस प्रकार वासुदेवशरण अग्रवाल जी के ''राष्ट्र का स्वरूप'' निबंध के अनुवाद को पढ़कर अंग्रेजों को संतुष्टि नहीं हुई, तो उन लोगों ने हिन्दी सीखा। फिर हिन्दी में लिखी गई राष्ट्र का स्वरूप मौलिक निबंध को पढ़कर उन्हें मानसिक परितृप्ति मिली। इसीलिए हिन्दी भाषा–भाषी भी विविध भाषाओं को सीखने का प्रयास करें। इससे आपस में एक विशेष आत्मीयता एवं स्नेह का संबंध स्वतः स्थापित हो जाता है। भाषा कोई भी हो उसपर आक्षेप न करें पर अपनी भाषा को सर्वोपरि समझकर अपने नैतिक कर्तव्य का पालन करें।

आज की वर्तमान युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति की चमक–दमक में लिप्त हो रही है। यह भविष्य के लिए भारत की महानता पर एक प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ा हो गया है। जबतक प्रत्येक भारतीयों के मन में हिन्दी के प्रति आदर, श्रद्धा और निष्ठा जागृत नहीं होगी, तबतक हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल कभी नहीं हो सकती है। भारत की जनसंख्या विश्व के किसी भी राष्ट्र से कम नहीं है, यदि हम भारतवासी हिन्दी के प्रति आदर की भावना रखें, तभी हिन्दी जनसंपर्क की भाषा अतिशीघ्र बन जायेगी।

तुर्कीस्तान की जीत होने पर कमाल पाशा ने कहा कि हमारे समस्त राजनैतिक कार्य, व्यापार एवं प्रशासनिक व्यवस्था कितने दिनों में तुर्की भाषा में हो जाएगी, तब कुछ लोगों ने कहा उसके लिए तो काफी समय लगेगा। कुछ ने कहा–यदि दिन–रात परिश्रम करें, तो तीन महीने में निश्चित हो जायेगा। तब कमाल पाशा ने क्रोधित होकर कहा कि मुझे तीन महीने की जरूरत नहीं है। मुझे चौबीस घंटे के अंदर हमारी प्रशासनिक भाषा तुर्की में क्रियान्वित किया जाए। मदन मोहन मालवीयजी ने कितना सच कहा है कि 'अंग्रेजी माध्यम' भारतीय शिक्षा में सबसे बड़ा विघ्न है। सभ्य संसार के किसी भी जन समुदाय या राष्ट्र की शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नहीं है।

शेख सादी जब 90 वर्ष के हुए तो अरब के सुल्तान ने उनके पास एक बेशकीमती हीरा भेजा और लिखा ''सारी जिन्दगी आपने कविता लिखने में ही गँवा दी, यदि इस हीरे के जोड़ (बराबरी) की कोई कविता आपके पास हो तो भेज दें। शेख सादी ने पढ़ा और हीरे को देखा और जवाब लिखा आप कविता की बातें करते हैं, किन्तु शायद आपको मालूम नहीं मेरी शायरी का एक एक शब्द आपके इस हीरे से कहीं अधिक कीमती है। मेरे शब्द दो बिछड़े दिलों का स्नेह सेतु बनने की क्षमता रखते हैं। जबकि आपका हीरा तो इंसानों के बीच खून की दरिया बढ़ाने का जरिया बनता है। मेरे शब्द ईश्वर के सिंहासन को हिलाने की क्षमता रखते हैं, जबकि आपका हीरा किसी भूखे इंसान की भूख मिटाने में एक चने की बराबरी नहीं कर सकता, बल्कि उल्टे उसका काल बन जाता है।

इससे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि अपनी भाषा के प्रति गौरव रखें, निष्ठा रखें और श्रद्धा रखें। जैसा कि कहा गया है–

कोटि–कोटि कंठों की भाषा, जनगण की मुखरित अभिलाषा।
हिन्दी है पहचान हमारी, हिन्दी है हम सबकी भाषा।

आलेख

हिंदी का विकास

अपना लक्ष्य : दूसरों का विरोध नहीं

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा
दिल्ली–110034
फोन नं. 09555622323

पिछले दिनों कुछ समाचार पत्रों में एक समाचार देखने में आया। शिवपुरी के एक मिशनरी स्कूल में पढ़नेवाले चौथी कक्षा के बच्चों को कक्षा में आपस में हिंदी में बातचीत करने पर सजा दी गई। अंग्रेजी माध्यम के प्राय: सभी पब्लिक स्कूलों में विद्यालय परिसर अथवा कक्षाओं में छात्रों के आपस में हिंदी में बातचीत करने पर हतोत्साहित किया जाता है। इसके लिए कई बार सजा भी दी जाती है। शिवपुरी के मिशनरी स्कूल में भी बच्चों को कक्षा में आपस में हिंदी में बातचीत करने पर सजा के तौर पर आठ पेज ''आई विल नॉट स्पीक इन हिंदी'' लिखने की सजा दी गई। इस प्रकार का प्रयास सार्थक अथवा उचित नहीं कहा जा सकता। यह व्यावहारिक ही नहीं है। ''आई विल नॉट स्पीक इन हिंदी'' ये लिखवाना ही मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि इसमें स्पष्ट रूप से हिंदी का विरोध तो झलकता है, लेकिन अंग्रेजी का पक्ष बिल्कुल नदारद है।

हिंदी का विरोध करने या उसका प्रयोग हतोत्साहित करने से अंग्रेजी या अन्य कोई भी भाषा अच्छी तरह से नहीं आ सकती। वास्तव में हमारी अपनी भाषा अथवा मातृभाषा जितनी अच्छी होगी, उतनी ही अच्छी तरह से हम दूसरी भाषाएँ अथवा अन्य विषय पढ़ सकते हैं। यदि हमारा माध्यम अंग्रेजी है तो हमें अच्छी अंग्रेजी भी आनी चाहिए। हम अंग्रेजी अच्छी तरह से सीखें और अच्छी अंग्रेजी बोलें–इसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन अच्छी अंग्रेजी बोलने के लिए अंग्रेजी का अभ्यास अनिवार्य है न कि हिंदी का विरोध। यदि हम आई विल नॉट स्पीक इन हिंदी कहते हैं तो इस वाक्य में अंग्रेजी के लिए तो हमने कुछ कहा ही नहीं। हमने तो सारा ध्यान हिंदी पर ही केंद्रित कर दिया। वास्तव में हमारा सारा ध्यान तो जो हमें सीखना है अथवा पाना है, केवल उस पर केंद्रित होना चाहिए।

आकर्षण के नियम के अनुसार हमें जो चीज पानी है अथवा जो चीज सीखनी है केवल उस पर ध्यान देना अनिवार्य है। जिस चीज से बचना हो, उससे ध्यान हटाने के लिए उसी का नाम दोहराना पूरी तरह से गलत है। भाषाओं के संदर्भ में भी ये नियम उसी तरह से काम करता है। दक्षिण भारत में कई बार हिंदी का प्रचंड विरोध होता है, जिसके कारण वे लोग हिंदी नहीं सीख पाते, लेकिन इससे हिंदी का कोई नुकसान नहीं होता। उनके विरोध के बावजूद हिंदी उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर है। जिस प्रकार दक्षिण भारत में कई बार हिंदी का विरोध होता है, उसी प्रकार से हम भी कई बार अंग्रेजी का खूब विरोध करते हैं। अंग्रेजी को पानी पी–पीकर कोसते हैं। क्या इससे अंग्रेजी को कोई क्षति पहुँचती है?बिल्कुल नहीं। यदि नुकसान होता है तो हमारा होता है। अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भाषा का विरोध करने से हमारी हिंदी थोड़े ही सुधर जाएगी?

यदि हमें हिंदी में सुधार करना है अथवा अच्छी हिंदी सीखनी है तो हमें अपना सारा ध्यान हिंदी पर केंद्रित करना चाहिए। मैं अंग्रेजी नहीं बोलता, कहने की बजाय ये कहना चाहिए और बार–बार कहना चाहिए कि मेरी हिंदी बहुत अच्छी है। मैं हिंदी में सारा कार्य करता हूँ। मुझे हिंदी से प्रेम है। आई लव हिंदी कह देंगे तो भी नुकसान नहीं, लाभ ही होगा। जहाँ तक अंग्रेजी के विरोध का प्रश्न है, वह भी सरासर गलत है। मेरे विचार से हिंदी भाषा के विकास में अंग्रेजी बाधक नहीं। यदि हमें अंग्रेजी अथवा दूसरी भाषाएं अच्छी तरह से आती है तो उससे हमारे हिंदी के स्तर में भी सुधार ही होगा। हिंदी वालों की स्थिति ये है कि वे अंग्रेजी अच्छी तरह जानते हुए भी बोल नहीं पाते। इसका एक ही कारण है अंग्रेजी का विरोध व उसमें कमियाँ निकालना। हम जिस चीज में कमियाँ निकालेंगे, उसे पाने या उसके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित ही नहीं होंगे।

यदि अच्छी हिंदी सीखनी है अथवा हिंदी के प्रयोग अथवा हिंदी में काम–काज को प्रोत्साहित करना है तो भी अंग्रेजी अथवा दूसरी भाषाओं का विरोध छोड़कर अपना सारा ध्यान हिंदी पर केंद्रित करना ही श्रेयस्कर होगा, क्योंकि अन्य कोई उपाय है ही नहीं। यदि हम प्रयास करके अपना सारा ध्यान किसी बात पर लगा देते हैं तो उसमें सफलता असंदिग्ध हो जाती है। आज हम केवल भाषाओं की ही बात करेंगे। आजकल मैं दिल्ली विश्वविद्यालय से पंजाबी भाषा का अध्ययन कर रहा हूँ। मार्च के अंत या अप्रैल के प्रारंभ में परीक्षाएँ होनी थी, लेकिन कोरोना संकट के कारण ये संभव न हो सका। मार्च में कक्षाएँ भी ठीक से नहीं हो पाई थीं। विषम परिस्थितियों के कारण पंजाबी में कुछ भी करने का मन नहीं बन पा रहा था कि पहले लॉक डाउन की घोषणा हो गई। लॉक डाउन के कारण भी कई समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।

कई समस्याएँ थीं, लेकिन इन समस्याओं के बीच मैंने एक कागज पर मोटे–मोटे अक्षरों में लिखा कि पहले लॉक डाउन के पूरे इक्कीस दिन पंजाबी की नियमित रूप से पढ़ाई करनी है और ये लिखकर अपने सामने ऐसी जगह पर लगा दिया, जहाँ से वो बार–बार दिखलाई पड़े। लेकिन इसके बावजूद मैं पंजाबी के पाठ्यक्रम से संबंधित कुछ नहीं पढ़ पाया। इक्कीस दिन के बाद फिर दूसरा, तीसरा और चौथा लॉक डाउन आ गया। इस दौरान भी पंजाबी के पाठ्यक्रम से मेरी दूरी बनी रही। पहले लॉक डाउन के पूरे इक्कीस दिन पंजाबी की नियमित रूप से पढ़ाई करनी है, अब ये संकल्प बदल कर परीक्षाओं तक पंजाबी की नियमित रूप से पढ़ाई करनी है, हो गया था; लेकिन ऐसा कुछ होता दिख नहीं रहा था।

मैं हैरान–परेशान था कि पाठ्यक्रम के अनुसार पंजाबी क्यों नहीं पढ़ पा रहा हूँ?हाँ, इस दौरान मैं पंजाबी का समाचार पत्र व उपलब्ध दूसरी पंजाबी पुस्तकें अनायास ही नियमित रूप से पढ़ने का अभ्यास करता रहा। ये सिलसिला तबतक चलता रहा, जबतक कि परीक्षाओं की तिथि निर्धारित नहीं हो गई। जैसे ही डेट शीट आई, मैं विचलित–सा हो गया, क्योंकि अभी तक पाठ्यक्रम के अनुसार कुछ भी नहीं किया गया था। अब मैंने केवल पाठ्यक्रम के अनुसार कार्य करने का मन बनाया। पाठ्यक्रम पर दृष्टि गई तो मैं ये देखकर सुखद आश्चर्य से भर गया कि इस दौरान पाठ्यक्रम का भी अधिकांश भाग पूर्ण हो चुका था और जो पाठ्यक्रम पहले बहुत कठिन लग रहा था, वो भी बहुत ही सरल लग रहा था। परीक्षाएँ प्रारंभ होने तक सारे पाठ्यक्रम की अच्छी तरह से पुनरावृत्ति हो गई और पेपर भी अपेक्षा से बहुत अधिक अच्छे हुए।

पंजाबी के अध्ययन के लिए यदि मैं ये संकल्प लेता कि मुझे हिन्दी, अंग्रेजी अथवा उर्दू नहीं पढ़नी है तो पंजाबी के अध्ययन के संदर्भ में इसका कोई महत्त्व नहीं था। इससे पंजाबी के अध्ययन में कोई सहायता नहीं मिलती। संयोग से इन्हीं दिनों मुझे अपनी पुत्री को उर्दू भी पढ़ानी पड़ी और हिन्दी में लिखता भी रहा, लेकिन फिर भी पंजाबी में अपेक्षा से अधिक सफलता मिली। वास्तव में इसका सारा श्रेय एक सकारात्मक विचार अथवा संकल्प को जाता है और वो विचार अथवा संकल्प है या था लॉक डाउन में अथवा परीक्षाओं तक पंजाबी की नियमित रूप से पढ़ाई करनी है। सफलता हम तक किस मार्ग से अथवा किस रूप में पहुँचेगी हमें इसपर माथापच्ची करने की जरूरत नहीं। जरूरत है तो केवल सही व सकारात्मक संकल्प लेने की। जिस प्रकार से मिट्टी में बीज बोने के बाद उनका उगना निश्चित है, उसी प्रकार सकारात्मक संकल्पों की पूर्णता भी निश्चित है। हिन्दी के उत्थान के लिए भी हमें सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करके सही संकल्प लेने की आवश्यकता है।

व्यंग्य

उनकी पहली हवाई यात्रा

वीना सिंह
38 महाराज अग्रसेन नगर
सीतापुर रोड लखनऊ
मो. 8005419950

एक लेखक के लिए किसी बड़े साहित्यिक कार्यक्रम में सम्मिलित होने की तो खुशी ही कुछ और होती है और यदि जीवन में पहली बार ऐसा मौका मिला हो तो खुद को सभालना ही मुश्किल हो जाता है। कुछ ऐसी ही खुशी हमारे बड़े भैया को नसीब हुई है। वैसे तो आए दिन वह गोष्ठियों में व्यस्त रहते हैं, पर उच्च स्तर के कार्यक्रम का न्योता पाकर बे बावरे से हो गये।

बड़े भइया का ऊँचे कार्यक्रम में ऊँचे रास्ते से जाने की खबर से हमारे भी कान तन गये। खबर पक्की जान मुँह मीठा करने के उद्देश्य से हम भागे–भागे पहुँचे, तो बड़े भैया अटैची सँभालते मिले। हमने जाते ही प्रश्न पर प्रश्न ठोक दिये, भैया! कहाँ, क्यों, कब, काहे जा रहे हो?भैया ने गुरूर से अकड़ती हुई आँखों को दाएँ–बाएँ घुमाते हुए मुझे नकारे तुच्छ प्राणी की तरह कई बार ऊपर से नीचे तक निहारा, फिर गरदन थोड़ी टेढ़ी करके बोले– एक महीने बाद एक बड़े से कार्यक्रम में, बड़े लोगों के बीच, बड़े हवाई जहाज से, बड़ी दूर जाना है। अब जाओ, यहाँ से बहुत काम करना है। बड़े भैया का बदला रूप देखकर हम तो आँखें और मुँह फैलाए के फैलाए रह गये। वे फिर झल्लाकर बोले– क्या साँप सूँघ गया, जो मुँह बाए खड़ी हो, या कुछ और पूछना है?हमने हकलाते हुए कहा–हाँ! मैं यह पूछ रही हूँ कि अभी जाने में एक महीने का समय है, फिर अटैची अभी से क्यूँ...वे मेरी बात काटकर बोले–नासमझ! बड़े कार्यक्रम की तैयारी भी बड़ी होती है, कहीं एक भी सामान भूल भुला गये तो हवाई जहाज से उतरकर लेने तो आ नहीं पाऊँगा। न ही तुझे फोन कर सकूँगा कि यहाँ रास्ते में खड़ा हूँ, फलाँ सामान घर पर छूट गया है, दौड़कर दे जाओ। अब तू क्या जाने, बड़े कार्यक्रमों की तैयारियाँ। अटैची लगाना ही एक काम नहीं है और भी बहुत–सी तैयारियाँ करनी है। कार्यक्रम में कौन–से कपड़े पहनने हैं, कौन–सी घड़ी बाँधनी है, चश्मे का फ्रेम पुराने स्टाइल का है, उसे बदलवाना है; फोन में पैसे भरवाने हैं, नये जूते भी खरीदने हैं। हम भी चुटकी लेने में पीछे नहीं रहे कि भैया! सब कुछ नया खरीद लीजिए, पर जूते फटे ही पहनिए। वे आँखें तरेर कर बोले–क्यों?वह इसलिए कि क्या पता आपके फटे जूते मुंशी प्रेमचन्द्र के फटे जूतों की तरह चर्चित हो जाएँ। समय का बदलाव किसने देखा, क्या पता आपके दुनिया छोड़ने के बाद (बुरा मत मानिए, अपने देश में लेखक मरने के बाद ही प्रसिद्धि पाते हैं) आपके जूतों पर वरिष्ठजन रचनाओं के ढेर लगा दें, बड़े–बड़े उपन्यास छपवा दें, लोग बात–बात में आपके फटे जूतों का जिक्र करें। मेरी सलाह ने एक क्षण के लिए तो उनके दिमाग पर प्रभाव डाला। बोले–हाँ, तुम्हारी बात में दम तो है, पर बड़ा कार्यक्रम है, वहाँ बड़े–बड़े लोगों के बीच में हमारी बेइज्जती भी तो हो सकती है। नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा, जूते नये ही खरीदेंगे। उन्होंने अपनी खोपड़ी खुजलाई और चिन्ता जताई कि चिन्ता केवल पहनने–ओढ़ने की नहीं हैं, बोलने की भी है। कुछ ऐसा बोलना चाहता हूँ कि वहाँ बैठे सभी भारी भरकम लोगों पर भारी पड़े।

मैंने ठहाका लगाया–अरे बड़े भैया! काहे को उतराते हुए बात कह रहे हो। बोलना तो आपके बाएँ हाथ का खेल है। आपके सामने तो बड़े–बड़े धुरंधर धूल चाटने लगते हैं (वे हमें घूरते, इससे पहले मैंने बात सँभाल ली) मतलब–बड़े–बड़े बड़बोलों की बोलती बन्द हो जाती है। एक बार माइक के सामने आपका मुँह खुल जाये तो फिर भगवान भी नहीं जानता कि कब बन्द होगा। वे गौरवान्वित हो सिर ऊँचा कर मुस्कराए। मैंने बात बढ़ाई, भैया! हम सुनी सुनाई बात थोड़े ही कह रहे हैं, खुद अपनी आँखों से देखे और कानों से सुने हैं कि जब आप बोलते हैं, तब लोग कैसी फब्तियाँ कसते हैं?उनकी प्रश्न करती आँखों ने मेरी आँखों में झाँका। तब मैंने बताया, यही कि साला कहाँ–कहाँ की फालतू बातें पेल रहा है। जिन बातों का साहित्य से कोई लेना–देना नहीं है, उन्हीं बातों को बारंबार ठेल रहा है। माइक तो ऐसे पकड़ा है, जैसे नेता कुर्सी पकड़ते हैं। भैया ने पलटकर हमें देखा, इस बार उनकी आँखें गुस्से से लाल हो रही थीं। यदि भोले भण्डारी की तरह तीसरा नेत्र होता, तो हमें जलाकर राख ही कर देते। हमें भी अपनी बेवकूफी पर थोड़ी शर्मिन्दगी हुई। जल्दी से अपनी बात पलटी कि बड़े भैया सुना है–हवाई जहाज का टिकट तो बड़ा महँगा होता है, तो क्या टिकट कार्यक्रम वाले लोग ही भेज रहे हैं?बोले–वे क्यों देंगे टिकट?वे हमें बुला रहे हैं यही बड़ी बात है, सबको थोड़े ही बुलाते हैं। हम हैं इस काबिल इसलिए। मैंने उनकी बात काटी तो फिर टिकट के पैसों की व्यवस्था कैसे होगी?क्योंकि हमें पता है कि आपके पास तो भुंजी भांग भी नहीं हैं। इस कॉपी कलम से तो दाल–रोटी ही मुश्किल से चल पाती है। लेखक यदि कलम के पैसों से हवाई यात्रा कर लेता, तो भला उसे गरीब की संज्ञा क्यूँ दी जाती और हाँ, बड़े भैया! बुरा मत मानना, इस बार हम भी कोई मदद नहीं कर पाऊँगी। इस बार मैं झल्ला उठा, चुप करो या जाओ यहाँ से। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, मैं कहीं न कहीं से टिकट का इंतजाम कर लूँगा। घर गिरवी रख दूँगा, पत्नी के जेवर बेच दूँगा, टिकट के पैसे इकट्ठा कर ही लूँगा, समझे। बात ज्यादा बिगड़ती देख हम दबे पैर वहाँ से खिसक लिए।

ज्यों–ज्यों कार्यक्रम के दिन नजदीक आ रहे थे, बड़े भैया तो ऐसे दुबले हो रहे थे, जैसे वोर्ड परीक्षा आने पर छात्र दुबले हो जाते हैं। दिन तो किसी तरह कट जाता, पर रात तो जैसे जाड़ों की रात जैसी हो जाती, बीतने का नाम ही नहीं लेती। हर पल दिल और दिमाग उथल–पुथल में रहता कि पता नहीं कैसा होगा वह दूर का शहर, कैसे होंगे वहाँ के लोग, कैसा लगेगा पहली बार हवाई जहाज में बैठकर?हवाई यात्रा का ख्याल आते ही पूरे वदन में सिहरन पैदा हो जाती, मन भीतर ही भीतर सिहर उठता। सोचते–विचारते अगर कभी आँख लग भी जाती, तो बस तुरन्त ही बन्द आँखों में हवाई यात्रा शुरू हो जाती। कभी हवाई जहाज के अन्दर बैठे ठाठ से अंग्रेजी डिसेज का मजा ले रहे होते, तो कभी शरबत पीनेवाले गले को व्हिस्की के घूट से तर कर रहे होते। कभी सुन्दर–सी एयर होस्टेज को देखकर कल्पनाओं में खो जाते, काश! छोटू की माँ ऐसी होती तो कुछ और बात होती। कभी खिड़की से झाँककर नीचे देखते फिर जोर से चिल्लाते, देखो छोटू की अम्मां! हम यहाँ इतने ऊँचे पर हैं, तुम चिन्ता न करना, जैसे उड़कर जा रहे हैं, वैसे ही उड़कर तुम्हारे पास वापस आ जायेंगे।

कई बार पत्नी हाथ हिलाकर पूछा–अरे छोटू के पापा! काहे गला फाड़ रहे हो, हम तो बगल में ही सोये हैं। रात भर प्लेन–प्लेन करते हो, न चैन से सोते हो, न सोने देते हो। हमें तो लगता है कुछ ऊपरी चक्कर है। वे इठलाए, अरे नहीं रे पगली! कोई ऊपर का चक्कर नहीं है, यह तो ऊँचाई छूने की खुशी है, जो अनजाने बयाँ हो जाती हैं। तुम्हें नहीं पता, यह सम्मान मिलने के बाद हमारा नाम भी सम्मानित लोगों की सूची में दाखिल हो जायेगा। हम भी वरिष्ठ कहलायेंगे, फिर देखना अपन का जल्बा। छोटू की माँ धीरे से बुदबुदाई, आग लगे ऐसी हवाई यात्रा को, तन के कपड़े, गहने, चौका की करछुल–बटुली तक बिकवा डाली, तब जाके टिकट खरीद पाये, बड़े बनने चले, सम्मानित और वरिष्ठ।

आखिर जाने का दिन आ ही गया। पूरा गाँव बड़े भैया को ऐसे विदाई देने पहँचा, जैसे अन्तिम विदाई हो। कुछ के तो आँसू भी टपक गये। गाँव की बूढ़ी दादी ने गले लगाकर हिदायत दी, देखो बड़े पहली बार हवाई जहाज मा बैठई जाइ रहे होउ, ऊपर वाले का नाम जपति रहेउ। हाथ, गोड़, खोपड़ी कछु खिरकिया से बाहर न निकारेउ। बड़के भइया दादी के भोलेपन पर मुस्कराये और सबको राम–राम कर चलते बने।

हवाई जहाज की यात्रा के दौरान जिस आनन्द की कल्पना उन्होंने की

थी, वैसा कुछ भी नहीं लगा। हवाई जहाज में बैठे तो, पर कब उड़े पता ही नहीं चला और पहुँच गये। ऐसा लगा उठाकर यहाँ से वहाँ धर दिये गये। खैर कोई बात नहीं, हवाई जहाज उड़ा हो या न उड़ा हो, यह उड़ाने वाले जाने, उन्हें पहुँचना था, सो पहुँच तो गये, पर अब जायें तो जायें कहाँ?हवाई अड्डे पर कोई लेने ही नहीं आया। माज़रा कुछ समझ नहीं आ रहा था, दिमाग चकराने लगा। फिर याद आया कि निमंत्रण कार्ड में पता तो लिखा ही है, खुद ही पूछते–पाछते पहुँच जायेंगे। अटैची का कोना–कोना छान मारा पर कार्ड नहीं मिला, माथा ठोका, उफ्! लगता है कार्ड घर पर ही भूल आए। जल्दी से कुर्ते की जेब से नोकिया सोलह सौ का छोटा प्यारा–सा मोबाइल निकाला और जल्दी से घर फोन लगाया। कहा–छोटू की माँ! हम बड़ी मुश्किल में हैं, जल्दी से कार्ड से पता देखकर बताओ। पत्नी ने अफसोस के साथ बताया कि कार्ड की तो नाव बनाके छोटू ने कबकी पानी में बहा दी। अब फोन पर बड़बड़ाने के अलावा कर भी क्या सकते थे। वे अपनी मूर्खता पर खुद ही लजाए, सोचा भी न था कि दूर शहर आते ही मुसीबत फट पड़ेगी। दो दिन शहर खगारते हो गया, पर कार्यक्रम स्थल ढूँढ़े नहीं मिला, तो नहीं मिला। अब उन्हें सिर पीटने के अलावा कुछ सूझ नहीं रहा था, इससे तो अच्छे अपने छोटे शहर के छोटे–छोटे कार्यक्रम ही थे। यहाँ तो सब अनजाना, सब बेगाना। किधर जाएँ, नहीं दिख रहा कोई ठिकाना?बड़े भैया की ऊँची उड़ान का गुब्बारा पल भर में फुस्स हो गया। अब वे किसी तरह अपने शहर पहुँच जाएँ, बस ऊपर वाले से यही प्रार्थना कर रहे हैं।

सरिता श्रीवास्तव
आसनसोल, बर्नपुर (प.बंगाल)

रेत सी फिसलती यूँ जिंदगी

आज जब मुट्ठियों में कुछ रेत भरी
क्या है जिंदगी यह आज जान पायी
राहों पर बिछे काँटों का कोहरा घना है

फिर भी समर की रेत पर चलते रहना,
रुकना मना है
रखी जब हवाओं की तरफ पीठ अपनी
सोची नहीं होगी स्पर्श मुझपर
रेत की लपटें उतनी

गलतफहमी आज ये दूर हो गयी
जब रेत हवा संग चारो तरफ पैल गयी
आकर जब किया उसने समाने से वार
समझा गयी मुझे जिंदगी की रफ्तार

वक्त निकलते देर नहीं लगती
जिंदगी को साकार बनाओ
इसे गुरजते देर नहीं लगती
पल–पल घटती है रेत सी जिंदगी
मिलेगी हर कदम संघर्षों से भरी

वक्त है बनाओ अपना नया आयाम
फिसलती रेत देती है ये बयाम
भरी मुट्ठी में फिर एक बार रेत
पर देख फिर फिसलन हो गयी सचेत

जिंदगी की परिभाषा आज जाना
जब रेत पर देखी मछलियों का तड़पना
देख हाथों में मेरे ये फिसलती रेत
आँसू भी ना निकल पाये मेरे

तेरे वजूद में ही छिपी है मेरी कीमत
वक्त दर वक्त गुजरती जा रही है
रेत–सी फिसलती यूँ जिंदगी
रेत–सी फिसलती यूँ जिंदगी.....।

मोतीलाल दास
बंडामुंडा, राउरकेला, उड़ीसा मो.–9931346271

नियति

आदमी
लौट आता है
हर रोज
थकहार कर
अपने घर

हो सकता है
किसी दिन
वह लौटे ही नहीं
अपने घर

और विलुप्त हो जाये
जैसे कोई तारा
टूटता है आकाश में।

काल

मौसम बदला
तारीखें बदली
पर नहीं बदला
मेरा समय

वही समय
जिसे तुझे सौंपकर
मैं करता रहा इंतजार
कि बदलेगा समय
ठीक किसी मौसम की तरह।

आखिर क्यों

मेरे रंग में
कोई भी रंग
मिलाने से तुम
डरते हो

तुम्हारे रंग में
कई–कई रंग
मिलाने को मैं
आतुर रहती हूँ।

आलोक भारती
मेन रोड जयनगर
मधुबनी
मो0 8392350609

ग़ज़ल

सर्दी जुकाम के मारे थे तुम कभी
किया अटैक बुखार ने भी तुम पे अभी

कोरोना मरीज कहीं तुम भी तो नहीं
सम्भल जा उससे होगा बेहतर तभी

गले में खाँसी तो मास्क पे भाय
लौटे हो तुम भी विदेश से अभी

चले आये औरों की आफत बन क्यूँ
कायदा कुछ जानते नहीं जनाब अभी

काश होती खुशी तुम्हें इमदार देके गर
करते अपनी औरों की सुनते नहीं कभी

सुनो आवाज वक्त की रही जिंदगी भर
करो कुछ ऐसा मक़सद मुल्क हित का भी।

जीवनी

अश्विनी कुमार दुबे

चंद्रभान राह,
शिर्डीपुरम, कोलाररोड, भोपाल
मो. 7471121969

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी अश्विनी कुमार के लेखन के लिए कहते हैं–''अश्विनी कुमार दुबे लेखन को समर्पित ऐसे खास व्यक्तित्व हैं, जो बेहद सक्षम और सफल व्यंग्यकार तो सालों से हैं, पर वे समर्पित उपन्यासकार, कथाकार और स्क्रिप्टराइटर भी हैं। वे व्यंग्य के समस्त उपादानों तथा कला में बेहद माहिर हैं। व्यंग्य लेखन उनके लिए छपने का सुख नहीं है। वे जीवन की विसंगतियों से विचलित और उद्वेलित होकर व्यंग्य करते हैं। वे व्यंग्य समाज के बेहद जिम्मेदार नागरिक हैं। उनकी दृष्टि व्यापक है। जीवन में जहाँ जो गलत घट रहा है, वे उसे बर्दाश्त नहीं कर पाते। परंतु वे केवल नकारात्मकता के, निषेध के व्यंग्यकार नहीं हैं, जैसा व्यंग्य लेखन का आम 'टाइप्डलेखन' बन गया है। उनके लिखे में निरंतर एक संपूर्ण मनुष्य की तलाश है।''

डॉ. प्रेमजनमेजय उनके लेखनकर्म के लिए कहते हैं–''अश्विनी कुमार दुबे मात्र व्यंग्यकार दृष्टिगत नहीं होते, वे मानव–जीवन की बेहतरी की चिंता में ग्रसित एक चिंतनशील साहित्यकार दृष्टिगत होते हैं।उनकी मूलचिंता समाज के निरंतर अनैतिक होने की है। अश्विनी कुमार दुबे की व्यंग्य रचनाओं में कहानी जिंदा है। वे विसंगतियों को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त करने में यकीन करते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर व्यंग्य अपनी अभिव्यक्ति के साथ रोचकता उत्पन्न करता है, वहीं कथा भी उत्प्रेरक का काम करती है, और संभवतः इसी कारण उनकी व्यंग्य रचनाएँ व्यंग्यात्मक टिप्पणियों के संकलन मात्र होने से बच गई हैं।इधर व्यंग्य लेखन में जो प्रदूषण आया है, उसमें अश्विनी कुमार दुबे जैसे रचनाकारों की रचनाएँ आश्वस्त करती हैं कि व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है।''

व्यंग्य लेखन के इस अत्यंत लोकप्रिय समय में अश्विनी कुमार दुबे ने अपने लेखन की शुरुआत की।उन्नीस सौ सत्तर के प्रारंभ में। श्रीकमला प्रसाद पांडेय उनके कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक हुआ करते थे।दुबे विज्ञान के छात्र थे। परंतु कमला प्रसादजी उन्हें बहुत पसंद करते थे। उन्होंने कॉलेज से निकलनेवाली पत्रिका का संपादक अश्विनी कुमार को ही बनाया। उन्हीं दिनों रीवा मेडिकल कॉलेज में ज्ञान चतुर्वेदी और अंजनी चौहान अपनी पढ़ाई कर रहे थे। कुछ समय के लिए प्रभु जोशी भी आकाशवाणी रीवा में अपनी नौकरी के दौरान पदस्थ हुए। सतना में अश्विनी कुमार दुबे और संतोष खरे व्यंग्य लिख रहे थे और रीवा में व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में ज्ञान चतुर्वेदी और अंजनी चौहान खासे लोकप्रिय थे।

अबतक अश्विनी कुमार दुबे का पहला व्यंग्य संग्रह तैयार हो चुका था। उन्होंने उत्साहपूर्वक अपनी पांडुलिपि राजकमल प्रकाशन को छपने के लिए भेज दी। उन्हें स्वयं आशा नहीं थी कि वह पांडुलिपि वहां प्रकाशन के लिए स्वीकृत हो जाएगी। कुछ दिनों बाद ही राजकमल प्रकाशन की डायरेक्टर श्रीमती शीला संधु का उनके पास पत्र आया कि आपकी व्यंग्य पांडुलिपि प्रकाशन के लिए स्वीकृत कर ली गई है। इस प्रकार सन् 1991 में अश्विनी कुमार दुबे का पहला व्यंग्य–संग्रह 'घूंघट के पट खोल' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया, जिसकी विस्तृत समीक्षा डॉ. शेरजंग गर्ग ने उस समय दैनिक हिंदुस्तान में लिखी। कुछ वर्षों पश्चात् भारतीय ज्ञानपीठ ने एक व्यंग्य पांडुलिपि प्रतियोगिता आयोजित की। इसमें देश के कई युवा व्यंग्यकारों ने अपनी पांडुलिपियाँ भेजीं। अश्विनी कुमार दुबे ने भी अपनी पांडुलिपि भेजी। डॉ. हरीशनवल की पांडुलिपि 'बागपत के खरबूजे' पुरस्कृत हुई। परंतु ज्ञानपीठ प्रकाशन ने अश्विनी कुमार दुबे की पांडुलिपि वापस नहीं की। उसे स्वतंत्र रूप से भारतीय ज्ञानपीठ ने 1996 में 'शहर बंद है' नाम से प्रकाशित किया। इसी वर्ष 1996 में ही किताब घर प्रकाशन से श्रीदुबे की एक और व्यंग्य कृति 'अटैची संस्कृति' प्रकाशित होकर आई। इसके पश्चात् प्रभात प्रकाशन ने अश्विनी कुमार के लगातार तीन व्यंग्य संग्रह 'अपने–अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तस्वीर' और 'बिन पूंजी की धंधा' प्रकाशित किए।

नौकरी में लगातार ट्रांसफर होते रहते हैं। पूरा छत्तीसगढ़ (बस्तर सहित) और भिंड–मुरैना को छोड़कर पूरे मध्य प्रदेश में नौकरी के दौरान अश्विनी कुमार दुबे को रहने का अवसर मिला। इससे जहाँ एक और अनुभव में परिपक्वता आई, विविध जीवन स्थितियों से उनका सामना हुआ, वहीं साहित्यिक संपर्क–संबंध छिन्न–भिन्न हुए। हर दो–तीन साल में उनका पता बदलता रहा। लिखना–पढ़ना भी नियमित नहीं हो पाया। लेकिन समय के साथ उनमें ड्ढढ़ता आई। इस बीच उन्होंने चार उपन्यास लिखे और कुछ फुटकर कहानियाँ भी। 'शेष अंत में' और 'जाने–अनजाने दुख' ये दो उपन्यास किताबघर प्रकाशन से आए और 'सप्तदर्शी' (जीवनीपरक उपन्यास) इंदिरा पब्लिशिंग हाउस से एवं एक व्यंग्य उपन्यास 'किसी शहर में' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित होकर आया। शास्त्रीय संगीत में श्रीदुबे की गहरी रुचि है। संगीत के इंदौर घराने पर केंद्रित उनकी एक पुस्तक रज़ा फाउंडेशन द्वारा राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होकर आई। इस प्रकार उनकी सृजन यात्रा सतत गतिशील है।इधर हम उनके व्यंग्य साहित्य पर विशेष बात करना चाहते हैं।

अबतक अश्विनी कुमार दुबे के छह व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और दो व्यंग्य संग्रह प्रकाशनाधीन हैं। इधर 2019 में उनका व्यंग्य उपन्यास 'किसी शहरमें' प्रकाशित होकर आया, जिसकी भूमिका प्रसिद्ध आलोचक डॉ. विजय बहादुर सिंह ने लिखी है।

इधर व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन आए हैं। अब हास्य को व्यंग्य में मिलाना लोगों को जरूरी लगता है। हास्य सहज आ जाए, बात अलग है, परंतु हर पैराग्राफ में पंच पैदा करने की कोशिश, व्यंग्य को नीचे की ओर ले जाती है। फिर वह व्यंग्य नहीं रह जाता, टिप्पणी जैसा होकर रह जाता है। हास्य को स्वतंत्र रूप से लिखा जाए, जो कठिन है और उसे बहुत कम लिखा जा रहा है। आखिर आज रवीन्द्रनाथ त्यागी जैसे प्रभावशाली लेखक कितने हैं?भाषा मेहनत से आती है, जिसका अभाव हम नई पीढ़ी में देख रहे हैं।

अश्विनी कुमार दुबे कथ्य प्रधान रचनाकार हैं। वे कहानियों में व्यंग्य लिखते हैं। निबंध शैली में भी उन्होंने व्यंग्य लिखे हैं, परंतु किस्सागोई उनकी पसंदीदा शैली है। जिन पुरानी कहानियों में उन्होंने नए संदर्भ ढूंढे हैं, वे रचनाएँ उनकी बहुत प्रभावशाली बन पड़ी हैं। एक कहानी उनकी बहुत पहले 'धर्मयुग' में छपी थी। (प्रथम व्यंग्य संग्रह में संगृहीत) 'पंच परमेश्वर : आधुनिक संदर्भ' अश्विनी कुमार दुबे अपनी कहानी में लिखते हैं कि अलगू चौधरी और जुम्मन शेख में मतलब की दोस्ती है। वे दोनों अलग–अलग राजनीतिक पार्टियों में हैं। गाँव में राहत कार्य, पंचायत को मिलने वाला फंड एवं दूसरे राजनीति कलाभों पर ही उनकी नजर है और इन्हीं बातों को लेकर आपसी झगड़े भी हैं। वे

एक–दूसरे को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। इसी बीच खालाजान की जमीन का मसला पंचायत में आ जाता है। कहानी का अंत होता है–खालाजान के कान तरस रहे हैं, पंच परमेश्वर की जय सुनने के लिए, परंतु इन दिनों गाँव में लालपार्टी जिंदाबाद, कालीपार्टी जिंदाबाद के नारे तेज होते जा रहे हैं।

इस प्रकार कई प्रसिद्ध कहानियों को अश्विनी कुमार दुबे ने आधुनिक संदर्भों में लिखा है। 'पंचतंत्र' की तो पूरी कथा शृंखला (ज्ञानपीठ से प्रकाशित संग्रह में) उन्होंने आधुनिक संदर्भ में लिखी है। वहाँ पंडित विष्णु शर्मा पशु–पक्षियों की कथाएँ सुनाकर राजा के बालकों को नीति की शिक्षा देते हैं। यहाँ प्रोफेसर विष्णु शर्मा छात्रसंघ का चुनाव लड़वाकर वही पशु–पक्षियों की कथाएँ सुनाते हुए एक नेता के बेटों को नीत (अनीति) की शिक्षा देते हैं।

जैसे परसाईजी की कहानियाँ कथा फ्रेम से बाहर झाँकती हुई दिखाई देती हैं, ऐसे ही अश्विनी कुमार दुबे ने भी कहानी की शैली में ही ज्यादातर व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं, परंतु उन्हें सिर्फ कहानी के साँचे में नहीं रखा जा सकता। जैसे उनकी एक कहानी है : 'बैंक कथा' ('धर्मयुग' में प्रकाशित) यह बैंक लूटने की कथा है, जिसमें बैंक मैनेजर डाकुओं से निवेदन करता है कि बैंक को यों लूटने की क्या जरूरत क्या है?आप हमसे करोड़ों रुपये का कर्ज ले लो और कभी मत लौटाओ। भाग जाओ विदेश। इस प्रकार उनकी कई व्यंग्य कथाएँ; 'अबला जीवन की कथा', 'थाने में बजरंगबली', 'राजधानी में चार दिन', 'डॉ. साहब की कथा', 'बुद्धिजीवी की कथा', 'साहब की महिमा', 'आत्महत्या के बाद', 'एक आवेदन पत्र की यात्रा कथा', 'साहित्यिक जलसा', 'फ्रेम से बड़ी तस्वीर','बिन पूँजी का धंधा','पाँव लागूँ करजोरी', 'बारात और मंत्रीजी', 'राजधानी के बाबू', 'एक तालाब की व्यथा कथा', 'दास्तान–ए–दफ्तर', 'दानवीर', 'अभिव्यक्ति के खतरे' और 'शैतान के दिलचस्प कारनामे' आदि। इस प्रकार किस्सागोई शैली में लिखी गई अश्विनी कुमार दुबे की बहुत सारी व्यंग्य रचनाएँ हैं, जो उनके आठ व्यंग्य संग्रहों में संगृहीत हैं।

अश्विनी कुमार दुबे ने व्यंग्य कहानियाँ लिखीं। एक व्यंग्य उपन्यास 'किसी शहरमें' भी लिखा और बहुत सारे व्यंग्य निबंध लिखे। उनके आठ व्यंग्य संग्रहों में उनकी लगभग पाँच सौ व्यंग्य रचनाएँ संगृहीत हैं। अश्विनी दुबे को विज्ञान, इतिहास, दर्शन और शास्त्रीय संगीत में बेहद दिलचस्पी है। उन्होंने इंजीनियरिंग की शिक्षा पाई। मैहर में बचपन बीता, वहाँ रहते हुए शास्त्रीय संगीत की समझ पैदा हुई। इतिहास और दर्शन अपनी रुचि के कारण वे खूब पढ़ते हैं। इन सबसे निकलकर आई उनकी निबंधात्मक शैली की व्यंग्य रचनाएँ। इनमें मेरे विश्वविद्यालय, शिक्षातंत्र, जंगल और शहर', 'एक निबंध गाँव पर', 'एक निबंध धर्म पर', 'किसानों पर सोचें', 'युद्ध के पक्ष में', 'दूध की लाज', 'अन्तस् ब्रह्म', 'रूपवाद की तलाश', 'न लिखने के फायदे', 'अपीलों का सच', 'गांधी जयंती', 'शिक्षाकर्मी : एक चिंतन', 'साहित्य समय', 'आह! ग्राम्य जीवन', 'भाषा का असर', 'अभिव्यक्ति के खतरे', 'पुस्तक प्रेमी', 'विकास', 'क्रांतिधर्मी' आदि। इस प्रकार निबंध शैली में भी अश्विनी कुमार दुबे ने बहुत सारी व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं, जो उनके व्यंग्य संग्रहों में संगृहीत हैं। आनेवाले समय में आलोचक इनका मूल्यांकन करेंगे।

इधर व्यंग्य लेखन में कॉलम राइटिंग का चलन बहुत बढ़ गया है। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी कॉलम राइटिंग का हमेशा विरोध करते रहे। फिर उनके मित्र संपादकों ने उनसे कॉलम लिखवा ही लिए। नया ज्ञानोदय, इंडिया टुडे, सहारा समय और राजस्थान पत्रिका में ज्ञान चतुर्वेदी ने सालों साल कॉलम राइटिंग की। उनके कॉलम राइटिंगवाले लेख उनकी पुस्तक 'अलग' में संगृहीत हैं, जिसमें उन्होंने अपनी कॉलमराइटिंग के लिए भूमिका में लंबा स्पष्टीकरण दिया है।

अश्विनी कुमार दुबे ने भी कॉलम लिखे हैं। प्रारंभ में रायपुर से प्रकाशित 'अमृत संदेश' में फिर इधर भोपाल से प्रकाशित 'सुबह–सवेरे' में लगातार दो सालतक। कॉलम राइटिंग से अश्विनी कुमार कभी संतुष्ट नहीं रहे। इस बीच लंबी और स्थायी महत्व की व्यंग्य रचनाएँ वे लगातार लिखते रहे और अभी भी लिख रहे हैं।

अश्विनी कुमार दुबे बताते हैं कि नौकरी में उनके कई ट्रांसफर हुए। इस बीच पढ़ना तो नहीं छूटा, परंतु लिखना रुक– रुककर हुआ। वे इसे रचना कर्म में अपनी पौढ़ता का समय मानते हैं। एक रचनाकार रोज लिखे, यह बात तो समझ में आती है, परंतु वह रोज छपे यह जरूरी नहीं है। रोज लिखते रहना, साहित्य साधना है और रोज छपते रहना, छपास रोग है। जिस समय को अश्विनीकुमार अपने लेखन में पौढ़ता का समय कहते हैं, उस समय में उन्होंने छह उपन्यास लिखे, जिनमें चार प्रकाशित हैं और दो प्रकाशनाधीन हैं। इस बीच शास्त्रीय संगीत पर केंद्रित एक किताब 'पंचामृत' रज़ा फाउंडेशन से प्रकाशित होकर आई।

बात अश्विनी कुमार दुबे के व्यंग्य के लेखन की हो रही थी। सन् 1970 से उनके व्यंग्य लेखन की यात्रा शुरू होती है। इसमें उनके आठ व्यंग्य संग्रह, जिनमें छह प्रकाशित, दो प्रकाशनाधीन और दो संचयन एक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से दूसरा डायमंड बुक्स से आये हैं। व्यंग्य उपन्यास के क्षेत्र में भी आपका काम है। 'किसी शहर में' आपका एक प्रसिद्ध व्यंग्य उपन्यास है। डायमंड बुक्स से प्रकाशित आपके चयनित संकलन 'चुनी हुई इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ' की भूमिका मेंउज्जैन के प्रसिद्ध व्यंग्यकार और टेपाधिपति डॉ. शिव शर्मा ने आपको एक सफल साहित्यकार कहा है। वे लिखते हैं–''अश्विनी कुमार दुबे की व्यंग्य कथाओं को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि एक साहित्यकार भी व्यंग्य में अपनी धाक जमा सकता है। मूलतः कहानीकार और उपन्यासकार होने के बाद भी व्यंग्य लेखन में उनकी पकड़ बरकरार है।''

अश्विनी कुमार दुबे के लेखन की दुनिया सिर्फ व्यंग्य पर समाप्त नहीं हो जाती। जैसे श्रीलाल शुक्ल और सूर्यबाला व्यंग्य और कथा क्षेत्र में समान रूप से प्रतिष्ठित हैं, कुछ वैसा ही वे अपना काम मानते हैं। उनका कहना है, लंबी रचनाओं में व्यंग्य का निर्वाह हो सकता है, वहाँ आपको पूरी बात कहने के लिए ज्यादा स्पेश है।

तत्कालीन व्यंग्य लेखन में भाषा का एक महत्वपूर्ण पक्ष उभरकर आया है। परसाई ने प्रयास करके व्यंग्यपूर्ण भाषा नहीं लिखी, वह उनके लेखन में सहज आ गई। शरदजोशी व्यंग्य में भाषा का चमत्कार लेकर आए, जिसने बहुत लोगों को आकर्षित किया। बाद के लोग उसी तरह की भाषा गढ़ने लगे। शरदजोशी की घुमावदार भाषा उनकी मौलिकता है। उसमें उनकी निजता झलकती है। इधर लोगों ने भरसक प्रयास करके भाषा में चुटीलापन पैदा करने की कोशिश की, जिससे रचना तो रोचक बनी, परंतु व्यंग्य की धार कमजोर होती गई। बात–बात में भाषा का घुमाव, हर पैराग्राफ में पंच और पूरी रचना में लगातार हास्य की उपस्थिति पैदा करके लोगों ने लोकप्रिय रचनाएँ तो लिखीं, किंतु प्रभावशाली नहीं।

अश्विनी कुमार दुबे के व्यंग्य लेखन में आपको कहीं कोई प्रयास दिखाई नहीं देगा। वे बात को सीधे, सरल ढंग से पकड़ते हैं, फिर परत दर परत उसे उधेड़ते चलते हैं। चरित्र के दोहरेपन को खोलना, यही उनके व्यंग्य की विशेषता है। उनका मानना है कि जैसा परिदृश्य दिखाई दे रहा है, वैसा नहीं है। नेपथ्य में राज कुछ और भी हैं। नेपथ्य के राज को पकड़ना और उसे सहज–सरल भाषा में अभिव्यक्त करना उनका अभीष्ट है। उनकी रचनाओं में

जैसे–जैसे चरित्र का दोहरापन खुलता जाता है, व्यंग्य स्वत: मुखर होता चला जाता है।वे पंच पैदा करने की कोशिश नहीं करते, भाषा को अनावश्यक घुमाते नहीं, रचना के बहाव में ये बातें खुद–ब–खुद आती चली जाती हैं और एक मुकम्मल व्यंग्य रचना बन जाती है। परसाई की भाँति वे भी मानते हैं कि 'करुणा' व्यंग्य का मूलतत्व है। उनकी रचनाओं में आई मुस्कुराहट ये बताती है कि इसके पीछे जबरदस्त गम छुपा हुआ है, जिसे व्यंग्यकार उद्घाटित कर रहा है। वे सीधी, सरल और सपाट भाषा लिखते हैं, जिसे उनके आलोचक सपाट बयानी कह सकते हैं। परंतु सपाटबयानी में क्या बड़ी बात नहीं कही जा सकती?अश्विनी सहज प्रवाह के लेखक हैं। वे लिखते जाते हैं, स्थितियाँ अपनी विद्रूपताओं से खुलती जाती हैं और सहसा किसी शेर या काव्य पंक्ति के साथ रचना समाप्त हो जाती है। किसी प्रभावशाली काव्य पंक्ति से रचना का अंत करना उनका अपना स्टाइल है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अश्विनी कुमार दुबे का व्यंग्य लेखन कथ्य प्रधान लेखन है। उसमें 'वस्तु' है। कोई बात है। कोई विसंगति है। केंद्र में कोई दोहरा चरित्र है। पंच, वक्रोक्ति और भाषा का घुमाव बाद में है, वह भी सहज–स्वाभाविक। प्रयासरहित। वे अपनी रचना में जान–बूझकर व्यंग्य मुहावरा डालने की कोशिश नहीं करते। व्यंग्य मुहावरा उनकी रचनाओं में स्वत: उत्सर्जित होता है। समकालीन व्यंग्य लेखन में जो निजता का संकट है अर्थात् बहुत लोग एक जैसा लिख रहे हैं, इससे अश्विनी कुमार दुबे पूरी तरह मुक्त हैं। उनका व्यंग्य अपने जैसा, जिसे नाम देखे बिना कोई भी कह सकता है कि यह अश्विनी कुमार दुबे की व्यंग्य रचना है। निश्चित ही अश्विनी कुमार दुबे का व्यंग्य पढ़ना, एक नए अनुभव से गुजरना है।

महेश शर्मा
224 सिल्वर हिल कॉलोनी, धार (म.प्र)
9340198976

गीत

छोटे–छोटे सुख

कितने छोटे–छोटे सुख है
बिखरे चारो ओर हमारे
ऊँचे ख्वाबों में जीते हम
उनको कहाँ देख पाते हैं

भँवरों की गुंजार मधुर है
कोयल के कंठों में सुर है
लेकिन हमने ध्यान दिया कब
प्रकृति के पाँवों में नुपूर है
वन उपवन की नीरवता में
मधुर गान गुंजा करता है
गहन शोर के आदि हैं
इन सबको कब सुन पाते हैं,
ऊँचे ख्वाबों में..

वर्षा की रिमझिम बूँदों में
कितना है उल्लास समाया
शीतल मंद पवन जो चली तो
दिल झुमा मधुमास सा छाया
समय समय पर बदला मौसम
जीवन के कई रंग दिखाए
हम डूबे अपनी उलझन में
इन पर ध्यान कहाँ लाते हैं, ऊँचे ख्वाबों..

गीत : इन्सान

कैसा है ये माहौल, चली ये कैसी हवा
इतने धर्म जमीं पे फिर भी कुछ ना हो सका

हम हिन्दू बने मुस्लिम ईसाई भी बने
हम बौद्ध जैन सिक्ख और यहूदी भी बने
ताज्जुब हजारों साल में बन पाये ना इन्सां
इतने धर्म जमीं पे फिर भी कुछ ना हो सका

लड़ने के तरीके कई ईजाद कर लिये
हर बात पे हर जात से विवाद कर लिये
एक प्यार का तरीका ना इजाद कर सका
इतने धर्म जमीं पे फिर भी कुछ ना हो सका

लड़ने लगी हैं फिर से सभी कौमे पहले सी
लेकर जुनुन धरम का प्यासी है खून की
कितना लहू बहा चुका फिर भी नहीं थका
इतने धर्म जमीं पे फिर भी कुछ ना हो सका

कैसा है ये माहौल चली कैसी ये हवा
इतने धर्म जमीं पे फिर भी कुछ ना हो सका

पराजय के बाद

तुमको लोग भूले जा रहे हैं
क्योंकि तुम जानते रहे हो
अपने अत्याचारों के कारण
और आज तुम हाथ खींचे हुए हो
कि तुम्हारे अत्याचारों को लोग भूल जाएँ
पर लोग तुम्हीं को भूले जा रहे हैं
करो कुछ जिससे कि वह शक्ति दुष्टता की
लोग फिर देखें और
लोग भयंकर मुग्ध हों
एक राष्ट्र के पतन का लक्षण है कि
वे जो जीवन भर परोपजीवी रहे
सत्ता के तंत्र में
आज उससे बाहर होकर
यह भ्रम फैला सकते हैं कि
वे किसी दिन यह समाज बदल देंगे
और अभी सिर्फ मौका देखते हुए बैठे हैं।

आलेख

सावन के मौसम में प्रेम की अनुभूति है कजरी

कृष्ण कुमार यादव,
निदेशक डाक सेवाएँ,
लखनऊ (मुख्यालय) परिक्षेत्र,
उ.प्र.–226001
मो0– 09413666599

भारतीय परम्परा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। यहाँ लोक कोई एकाकी धारणा नहीं है, बल्कि इसमें सामान्य–जन से लेकर पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, ऋतुएँ, पर्यावरण, हमारा परिवेश और हर्ष–विषाद की सामूहिक भावना से लेकर श्रृंगारिक दशाएं तक शामिल हैं। 'ग्राम–गीत' की भारत में प्राचीन परंपरा रही है। लोकमानस के कंठ में, श्रुतियों में और कई बार लिखित–रूप में यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में–'ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री–पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति मानो गान करती है। प्रकृति का यह गान ही ग्राम गीत है...।' इस लोक संस्कृति का ही एक पहलू है– कजरी। ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच कजरी की धारायें समवेत फूट पड़ती हैं। यहाँ तक कि जो अपनी मिट्टी छोड़कर विदेशों में बस गए, उन्हें भी यह कजरी अपनी ओर खींचती है। तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूंज छोड़ चुकी है। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर–दूर तक सुनाई देती है –

''रिमझिम बरसेले बदरिया
गुईयां गावेले कजरिया
मोर सवरिया भीजै न
वो ही धानियाँ की कियरिया
मोर सविरया भीजै न।''

वस्तुतः 'लोकगीतों की रानी' कजरी सिर्फ गायन भर नहीं है, बल्कि यह सावन मौसम की सुन्दरता और उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है। प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अविरल सहेली, निर्मल और लज्जा से सजी–धजी नवयौवना की आसमान छूती खुशी, आदिकाल से कवियों की रचनाओं का श्रृंगार कर, उन्हें जीवंत करनेवाली 'कजरी' सावन की हरियाली बहारों के साथ जब फिज़ा में गूंजती है तो देखते ही बनता है। प्रतीक्षा के पट खोलती लोकगीतों की श्रृंखलाएँ इन खास दिनों में गजब–सी हलचल पैदा करती हैं, हिलोर सी उठती है, श्रृंगार के लिए मन मचलता है और उस पर कजरी के सुमधुर बोल! सचमुच 'कजरी' सबकी प्रतीक्षा है, जीवन की उमंग और आसमान को छूते हुए झूलों की रफ्तार है। शहनाइयों की कर्णप्रिय गूंज है, सुर्ख लाल मखमली वीर बहूटी और हरियाली का गहना है, सावन से पहले ही तेरे आने का एहसास! महान कवियों और रचनाकारों ने तो कजरी के सम्मोहन की व्याख्या विशिष्ट शैली में की है। मौसम और यौवन की महिमा का बखान करने के लिए परंपरागत लोकगीतों का भारतीय संस्कृति में कितना महत्व है–कजरी इसका उदाहरण है। चरक संहिता में तो यौवन की संरक्षा व सुरक्षा हेतु बसन्त के बाद सावन महीने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। सावन में नयी ब्याही बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बगीचों में भाभी और बचपन की सहेलियों संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं–

''घरवा में से निकले ननद–भउजईया
जुलम दोनों जोड़ी साँवरिया।''

छेड़छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के पति बाहर गये होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं ताकि कजरी की गूँज उनके प्रीतम तक पहुँचे और शायद वे लौट आयें–

''सावन बीत गयो मेरो रामा
नाहीं आयो सजनवा ना।...
भादों मास पिया मोर नहीं आये
रतिया देखी सवनवा ना।''

यही नहीं जिसके पति सेना में या बाहर परदेश में नौकरी करते हैं, घर लौटने पर उनके साँवले पड़े चेहरे को देखकर पत्नियाँ कजरी के बोलों में गाती हैं –

''गौर–गौर गइले पिया
आयो हुई का करिया
नौकरिया पिया छोड़ दे ना।''

एक मान्यता के अनुसार पति विरह में पत्नियाँ देवि 'कंजमल' के चरणों में रोते हुए गाती हैं, वही गान कजरी के रूप में प्रसिद्ध है–

''सावन हे सखी सगरो सुहावन
रिमझिम बरसेला मेघ हे
सबके बलमउवा घर अइलन
हमरो बलम परदेस रे।''

नगरीय सभ्यता में पले–बसे लोग भले ही अपनी सुरीली धरोहरों से दूर होते जा रहे हों, परन्तु शास्त्रीय व उपशास्त्रीय बंदिशों से रची कजरी अभी भी उत्तर प्रदेश के कुछ अंचलों की खास लोक संगीत विधा है। कजरी के मूलतः तीन रूप हैं– बनारसी, मिर्जापुरी और गोरखपुरी कजरी। बनारसी कजरी अपने अक्खड़पन और बिन्दास बोलों की वजह से अलग पहचानी जाती है। इसके बोलों में अइले, गइले जैसे शब्दों का बखूबी उपयोग होता है, इसकी सबसे बड़ी पहचान 'न' की टेक होती है–

''बीरन भइया अइले अनवइया
सवनवा में ना जइबे ननदी।...
रिमझिम पड़ेला फुहार
बदरिया आई गइले ननदी।''

विंध्य क्षेत्र में गायी जानेवाली मिर्जापुरी कजरी की अपनी अलग पहचान है। अपनी अनूठी सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण मशहूर मिर्जापुरी कजरी को ही ज्यादातर मंचीय गायक गाना पसन्द करते हैं। इसमें सखी–सहेलियों, भाभी–ननद के आपसी रिश्तों की मिठास और छेड़छाड़ के साथ सावन की मस्ती का रंग घुला होता है–

''पिया सड़िया लिया दा मिर्जापुरी पिया
रंग रहे कपूरी पिया ना
जबसे साड़ी ना लिअईबा
तबसे जेवना ना बनईबे
तोरे जेवना पे लगिहैं मजूरी पिया
रंग रहे कपूरी पिया ना।''

विंध्य क्षेत्र में पारम्परिक कजरी धुनों में झूला झूलती और सावन भादो मास में रात में चौपालों में जाकर स्त्रियाँ उत्सव मनाती हैं। इस कजरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हैं और इसकी धुनों व पद्धति को नहीं बदला जाता। कजरी गीतों की ही तरह विंध्य क्षेत्र में कजरी अखाड़ों की भी अनूठी परम्परा रही है। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन गुरू–पूजन के बाद इन अखाड़ों से कजरी का विधिवत् गायन आरम्भ होता है। स्वस्थ परम्परा के तहत इन कजरी अखाड़ों में प्रतिद्वन्द्विता भी होती है। कजरी लेखक गुरु अपनी कजरी को एक रजिस्टर पर नोट कर देता है, जिसे किसी भी हालत में न तो सार्वजनिक किया जाता है और न ही किसी को लिखित रूप में दिया जाता है। केवल अखाड़े का गायक ही इसे याद करके या पढ़कर गा सकता है–

''कइसे खेलन जइबू
सावन में कजरिया
बदरिया घिर आईल ननदी
संग में सखी न सहेली
कईसे जइबू तू अकेली
गुंडा घेर लीहें तोहरी डगरिया।''

बनारसी और मिर्जापुरी कजरी से परे गोरखपुरी कजरी की अपनी अलग ही टेक है और यह 'हरे रामा' और 'ऐ हारी' के कारण अन्य कजरी से अलग पहचानी जाती है–

हरे रामा, कृष्ण बने मनिहारी
पहिर के सारी, ऐ हारी।

सावन की अनुभूति के बीच भला किसका मन प्रिय मिलन हेतु न तड़पेगा, फिर वह चाहे चन्द्रमा ही क्यों न हो–

''चन्दा छिपे चाहे बदरी मा
जब से लगा सवनवा ना।''

विरह के बाद संयोग की अनुभूति से तड़प और बेकरारी भी बढ़ती जाती है। फिर यही तो समय होता है इतराने का, ''फरमाइशें पूरी करवाने का–

पिया मेंहदी लिआय दा मोतीझील से
जायके साइकिल से ना
पिया मेंहदी लिअयिहा
छोटकी ननदी से पिसईहा
अपने हाथ से लगाय दा
कांटा–कील से
जायके साइकिल से।....
धोतिया लइदे बलम कलकतिया
जिसमें हरी–हरी पतियाँ।''

ऐसा नहीं है कि कजरी सिर्फ बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर के अंचलों तक ही सीमित है, बल्कि इलाहाबाद और अवध अंचल भी इसकी सुमधुरता से अछूते नहीं हैं। कजरी सिर्फ गाई नहीं जाती, बल्कि खेली भी जाती है। एक तरफ जहाँ मंच पर लोक गायक इसकी अद्भुत प्रस्तुति करते हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी सर्वाधिक विशिष्ट शैली 'धुनमुनिया' है, जिसमें महिलायें झुक कर एक दूसरे से जुड़ी हुयी अर्धवृत्त में नृत्य करती हैं।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ अंचलों में तो रक्षाबन्धन पर्व को 'कजरी पूर्णिमा' के तौर पर भी मनाया जाता है। मानसून की समाप्ति को दर्शाता यह पर्व श्रावण अमावस्या के नवें दिन से आरम्भ होता है, जिसे 'कजरी नवमी' के नाम से जाना जाता है। कजरी नवमी से लेकर कजरी पूर्णिमा तक चलने वाले इस उत्सव में नवमी के दिन महिलायें खेतों से मिट्टी सहित फसल के अंश लाकर घरों में रखती हैं एवं उसकी सात दिनों तक माँ भगवती के साथ कजमल देवी की पूजा करती हैं। घर को खूब साफ–सुथरा कर रंगोली बनायी जाती है और पूर्णिमा की शाम को महिलाएँ समूह बनाकर पूजी जानेवाली फसल को लेकर नजदीक के तालाब या नदी पर जाती हैं और उस फसल के बर्तन से एक दूसरे पर पानी उलचाती हुई कजरी गाती हैं। इस उत्सवधर्मिता के माहौल में कजरी के गीत सातों दिन अनवरत गाये जाते हैं।

कजरी लोक संस्कृति की जड़ है और यदि हमें लोक जीवन की ऊर्जा और रंगत बनाये रखना है, तो इन तत्वों को सहेजकर रखना होगा। कजरी भले ही पावस गीत के रूप में गायी जाती हो पर लोक रंजन के साथ ही इसने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग–विराग या शृंगार और विरह के लोकगीतों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें चर्चित समसामयिक विषयों की भी गूँज सुनायी देती है। इसमें कोई शक नहीं कि सावन प्रतीक है सुख का, सुन्दरता का, प्रेम का, उल्लास का और इन सबके बीच कजरी जीवन के अनुपम क्षणों को अपने में समेटे यूँ ही रिश्तों को खनकाती रहेगी और झूले की पींगों के बीच छेड़–छाड़ व मनुहार यूँ ही लुटाती रहेगी। कजरी हमारी जनचेतना की परिचायक है और जब तक धरती पर हरियाली रहेगी कजरी जीवित रहेगी। अपनी वाच्य परम्परा से जन–जन तक पहुँचने वाले कजरी जैसे लोकगीतों के माध्यम से लोकजीवन में तेजी से मिटते मूल्यों को भी बचाया जा सकता है।

'सुसंभाव्य' साहित्यिकी में आप सभी रचनाकारों का स्वागत है। पत्रिका में विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाती हैं। साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें। कविता को कविता के स्वरूप में ही भेजें लघुकथा के स्वरुप में नहीं एवं सारगर्भित हों। पुस्तक समीक्षाओं तथा आलेखों का स्वागत है, किन्तु रचनाएँ अधिक लम्बी नहीं हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक/पुस्तक के कवर चित्र लेखक का छायाचित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ की हार्ड कॉपी डाक से अवश्य भेजें। रचना प्रकाशन हेतु तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायगा। पत्रिका की प्रतिक्रिया अवश्य भेजें।

साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार आज भी मानव मूल्य ही है। साहित्य ही मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।

धन्यवाद
सम्पादक सुसंभाव्य

कहानी

लड़की की जात

नीरजा हेमेन्द्र
न्यू हैदराबाद, लखनऊ –07, उत्तर प्रदेश
मो.– 9450362276

अक्टूबर का महीना प्रारम्भ हो चुका था। शाम की हवाओं में हल्की–हल्की ठंड की खनक घुलने लगी थी। आज मैं कार्यालय से घर लौट रहा था तो रास्ते में मेरा ध्यान बार–बार एक विशेष चीज की ओर चला जा रहा था। वो यह था कि शहर के अनेक घरों में कहीं पुताई का काम चल रहा था....तो कहीं मरम्मत के काम में मजदूर लगे थे। सहसा मुझे स्मरण आया कि अगले माह के प्रथम सप्ताह दीपावली है। यह रंगाई–पुताई, मरम्मत आदि के कार्य उसी पर्व को दृष्टि में रखते हुए हो रहे हैं। लोग पर्व की तैयारियों में लगे थे। घर–बार की मरम्मत, साफ–सफाई आदि के कार्य उसी को दृष्टि में रखकर हो रहे थे। मैं अपने घर के बारे में सोचने लगा। पाँच–छः वर्ष हो गए हैं, मुझे अपने घर को पुतवाये हुए। घर रंगाने–पुताने लायक हो गया है। किन्तु करवा नहीं पा रहा हूँ। कारण तो मात्र यही है कि मेरे पास इस समय पर्याप्त पैसे नही हैं। मन को बहलाने के लिए सोच लेता हूँ कि समय नहीं है। मेरी सेवा निवृत्ति में मात्र दो वर्ष शेष रह गए हैं। सोचता हूँ कि अब सेवा निवृत्ति के पश्चात् ही ये सभी काम करूँ। क्योंकि उस समय मेरे पास पर्याप्त पैसे भी रहेंगे और समय भी रहेगा। जैसे अबतक पड़ा है, वैसे दो वर्ष और सही। घर के बारे में सोचते–सोचते मेरा घर आ गया।

अपने घर के छोटे–से गेट पर पहुँच मैं अपने मकान को ध्यान से देखने लगा। यद्यपि पाँच–छः वर्ष पूर्व घर का रंग–रोगन करवाया था, किन्तु देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे बीसियों वर्ष हो गये हों इस घर को पुतवाये हुए। कितना पुराना हो गया है घर। पिताजी कहा करते थे कि जब दादाजी गाँव से यहाँ रहने के लिए आये थे, तब मुख्य शहर में उन्होंने यह जमीन ली थी और दो मंजिला घर बनवाया था। लगभग सत्तर वर्ष पुरानी बात हो गयी है। पुराना घर नवनिर्मित मकानों के समक्ष कहाँ ठहर सकता है भला। अब मरम्मत और पुताई माँगता है। दो वर्ष की धूप–बारिश, आँधी–तूफान रोकते–रोकते इसकी अवस्था थोड़ी और पुरानी, जर्जर हो जायेगी। मकान की हालत खराब हो तो हो, इस मकान की मरम्मत तभी कराऊँगा, जब सेवानिवृत्त हो जाऊँगा। अभी मैं थोड़े–बहुत जमा किये पैसे मकान को सजाने जैसे गैर ज़रूरी कार्य में खर्च करना आवश्यक नहीं समझता। मैं करूँ भी तो क्या करूँ...?ऐसा नहीं है कि मैं अपने मकान का जीर्णोद्धार करना नहीं चाहता था। तीन–तीन बच्चों की परवरिश, शिक्षा और घर गृहस्थी के अनेक खर्चों को पूरा करना आज के समय में जब कि महँगाई आसमान छू रही है, आसान नहीं था। मेरे तीन बच्चे हैं। दो बेटियाँ व एक बेटा। बड़ी बेटी का ब्याह मैंने कर दिया है। स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई पूरी करने के बाद विवाह से पूर्व नौकरी के लिए अनेक प्रयत्न उसने किए, किन्तु सफल न हो सकी। विवाह के पश्चात् इस समय वह अपनी ससुराल में है और ठीक ही है। अब उसके दो बच्चे हैं। बड़ा बेटा चार वर्ष का तथा छोटा तीन वर्ष का है। शेष सब कुछ ठीक ही है। छोटी बेटी ग्रेजुएशन कर रही है। यह अन्तिम वर्ष है। आगे और पढ़ना चाहती है, किन्तु भ्रमित है कि आगे कौन–सी पढ़ाई करें, जिससे नौकरी में लग जायें। बड़ी बहन ने इतिहास से एम. ए. किया था। प्रयत्न करने के पश्चात् भी नौकरी नहीं मिली। बेटा इण्टर फाईनल में है। वो बी.टेक. कर इन्जीनियर बनना चाहता है। बी.टेक. की फीस कम नहीं है। किन्तु बेटे की इच्छा पूरी करनी ही है। बच्चों के भविष्य के लिए सोचना सबसे पहला उत्तरदायित्व है मेरा। बेटे का भविष्य बन जाये, बच्चे आत्मनिर्भर हो जायें, उससे अच्छी बात और क्या हो सकती है?घर–मकान तो बाद में भी सजते–सँवरते रहेंगे।

दिन पंख लगाकर उड़ते चले जा रहे हैं। बेटा आज प्रसन्न है। इण्टरमीडिएट में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने के पश्चात् इसी शहर के एक अच्छे कॉलेज के बी.टेक. में उसका एडमिशन हो गया है। मैं भी खुश हूँ यह सोचकर कि यदि कहीं किसी दूसरे शहर में उसका एडमिशन होता, तो मेरे खर्चे बढ़ जाते। मुझे आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता। उसकी फीस इत्यादि भर दी गई है। वह कॉलेज जाने लगा है। समय व्यतीत होता जा रहा है। देखते ही देखते दो वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन वो भी आया जब मैं सेवानिवृत्त हो गया। दूसरी बेटी का ब्याह और बेटे की शिक्षा का पूरा उत्तरदायित्व शेष था। सेवानिवृत्ति के बाद कुछ दिनों तक तो घर में अच्छा लगा। किन्तु धीरे–धीरे जीवन में अब नीरसता व्याप्त होने लगी थी। अपने पुराने घर को देखकर मेरी चिन्ता और बढ़ जाती। सोचता यह तो पूरा का पूरा घर ही पुराना है। नीचे से ऊपर तक पूरा का पूरा ही ठीक कराना पड़ेगा। बाहर की दीवारें, बैठक, बरामदा सबके प्लास्टर गिर रहे हैं।

''मधु! घर की दशा अत्यन्त खराब हो गयी है। अब मरम्मत कराना आवश्यक हो गया है। कबसे काम प्रारम्भ करायें, कुछ समझ में नहीं आ रहा है?घर ठीक कराने में अच्छे–खासे पैसे भी लगेंगे। रश्मि का विवाह अब तक नहीं हो पाया है। विवाह में न जाने कितने पैसे लगेंगे?यही सोचकर घर की मरम्मत में हाथ नहीं लगा रहा हूँ। रश्मि का विवाह हो जाता, तो कोई चिन्ता न रहती।''मन की दुविधा को पत्नी के सामने रखते हुए मैंने कहा।

''मकान पुराना तो अवश्य हो गया है। किन्तु मेरा विचार ये है कि मकान के बाहर–बाहर पुताई करवा लीजिये। रश्मि की शादी के बाद जो कराना है, कराइयेगा।''पत्नी ने कहा।

''हाँ, रश्मि की शादी...?किन्तु कब?कैसे करूँ?कुछ समझ में नहीं आ रहा है। अभी तो वह नौकरी के लिए प्रयत्न कर रही है।''इससे अधिक मैं कुछ नहीं बोल पाया।

''आप तो ऐसे आश्चर्य कर रहे हैं, जैसे रश्मि की शादी नहीं करेंगे...?उसकी शिक्षा पूरी हो चुकी है। वह नौकरी के लिए प्रयत्न कर रही है। इतनी शीघ्र नौकरी मिलती कहाँ है...?हम उसे प्रयत्न करने से मना नहीं कर रहे हैं। वो अपना कार्य करती रहे, किन्तु हमें तो समय से उसका ब्याह कर देना है।''पत्नी ने कहा।

''हूँ...। मधु सही कह रही है। इस समय रश्मि का विवाह हमारी पहली प्राथमिकता है। मैंने मकान ठीक कराने का विचार का त्यागकर पुत्री के विवाह का मन बना लिया।

अब हमारा पहला काम यह था कि हम पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश करें। वर ढूँढ़ने के लिए मैंने उन रिश्तेदारों को भी फोन किया, जिनसे बात किये अरसा हो गया था। यद्यपि मैं जानता था कि इनसे कुछ खास मदद मिलनेवाली नहीं है। अखबारों में वैवाहिक विज्ञापन भी देखने लगा। ठीक लगे कुछ लड़कों के फोन नम्बर भी लिख लिए थे। लड़केवालों से बात करने लगा, किन्तु अभी तक बात बनी नहीं थी। वे लड़के मेरी चयन कसौटी पर खरे नहीं उतर रहे थे। जिन रिश्तेदारों को वर बताने के लिए कहा था, उन्होंने पलटकर फोन तक नहीं किया था। धीरे–धीरे एक वर्ष और व्यतीत हो गया। मैंने सोचा कि बेटी के लिए वर का चयन करने के लिए इतने कठोर नियमों पर नहीं चलूँगा। मैं उन्हीं लड़कों में से किसी एक सही लड़के का चयन कर लूँगा। यह बात मैंने पत्नी से भी बता दिया।

''सुनिये, एक लड़के के घर से फोन आया था। वे लोग रश्मि को देखने

अगले हफ्ते देखने आना चाहते हैं।'' एक दिन बाजार से मेरे घर आने पर पत्नी ने कहा।

''ठीक है।'' मैंने कहा।

''मैं रश्मि को बता देती हूँ। इस समय वो अपने कमरे में है। ''कह कर पत्नी रश्मि के कमरे की ओर बढ़ गयी।

''मैंने सुन लिया है मम्मी। मैं बाजार में लगाई गई बिक्री की कोई वस्तु नहीं हूँ कि कोई मुझे देखने आयेगा और मुझे पसन्द करेगा। नहीं ठीक लगी तो मना करके चला जायेगा।'' रश्मि अपनी माँ से कह रही थी। उसकी आवाज मुझ तक आ रही थी।

''हूँ..हँ.., शादी कर लो। बस्स... हो गई इन लोगों की जिम्मेदारी पूरी और मेरा जीवन...कुछ नहीं...।'' रश्मि ने बुदबुदाते हुए कहा।

'' ये लो...अब ये बातें सुनो। लड़कियों की व्याह–शादी तो ऐसे ही होती हैं। उन्हें लड़केवाले देखने आते ही हैं।'' पत्नी ने रश्मि को समझाते हुए कहा।

'' नहीं मम्मी! ये सब पहले होता होगा। अब नहीं चलेगा। मैं सज–सँवरकर किसी के सामने नहीं जाऊँगी। मैं नौकरी के लिए प्रयत्न कर रही हूँ। मुझे थोड़ा समय दीजिये। अभी आपलोगों को मेरे लिए लड़का देखने की आवश्यकता नहीं है।'' कहती हुई रश्मि कमरे से बाहर आ गयी और रसोई की ओर बढ़ गयी। उसके पीछे–पीछे पत्नी भी बाहर आ चुकी थीं।

रसोई से खट–पट की आवाजें आने लगी थीं। कदाचित् रश्मि रसोई में कोई काम कर रही थी।

''सुनिये, क्या जमाना इतना बदल गया है?आपने बिटिया की बात तो सुनी ही होगी...?'' पत्नी मेरे पास ड्राइंग रूम में आकर धीरे से बोलीं। धीरे से बोलने का उद्देश्य यह था कि कहीं रश्मि सुन न ले।

पत्नी की बात सुनकर मैं खामोश रहा। ऐसी उलझी परिस्थितियों में जब कुछ स्पष्ट नहीं होता, मैं बहुधा खामोश हो जाता हूँ।

''इसकी बड़ी बहन ने हम लोगों के कहने से, जहाँ हमने चाहा उसने विवाह किया। चाहे जैसे भी हो, अब अपनी ससुरल में है।....ये लड़की नये ज़माने की बात कर रही है। हमने पढ़ाया–लिखाया, नौकरी के लिए भी मना नहीं कर रहे हैं...।'' पत्नी अभी तक धीमे–धीमे बुदबुदा रही थी। मैं यह सोचकर निश्चिन्त होने का प्रयत्न कर रहा था कि आज नहीं तो कल मुझे अपनी बेटी का व्याह करना है। मध्यमवर्गीय तौर–तरीके से विवाह करने भर के पैसे मेरे पास हैं।

दिन व्यतीत होते जा रहे थे। ऋतुएँ बदल रही थीं। परिवर्तन का प्रभाव मनःस्थितियों पर पड़ता है या नहीं ये मैं नहीं जानता क्योंकि मेरा मकान नवनिर्माण की राह देख रहा था तथा बेटी नये जमाने के साथ चलने की बात कर रही थी। इन्हीं दो उत्तरदायित्वों को पूरा करने की फ़िक्र में बस मेरे दिन व्यतीत हो रहे थे। रश्मि चाहती क्या है...?माता–पिता द्वारा तय की गयी शादी वो करना नहीं चाहती। आखिर कबतक वो ऐसे ही बैठी रहेगी आत्मनिर्भर बनना चाहती है, किन्तु सत्य यह भी है कि नौकरी आसानी से मिलती नहीं। प्राइवेट नौकरी में शोषण की संभावनायें भी रहती हैं....शारीरिक स्तर पर हो या मानसिक। यह बात वो जानती है। अतः सरकारी नौकरी की ओर उसका झुकाव है। प्रेम विवाह को आदर्श विवाह मानती है। प्रेम स्वतः उत्पन्न भावना है, उस भावना की वो सृजनकर्त्ता तो है नहीं...अतः प्रेम विवाह उसके हाथ में नहीं है। मैं समझ नहीं पा रहा कि आज के बच्चे इतने भ्रमित क्यों हैं..?इन समस्याओं को लेकर घर में भी प्रतिदिन बातचीत होती। हल कुछ न निकलता। इन उलझे प्रश्नों को मैंने यूँ ही अनुत्तरित छोड़ दिया तथा रश्मि के विवाह की बात को कुछ समय के लिए टालना उचित समझा।

रश्मि के विवाह की चर्चा बन्द होते ही अब घर में सब कुछ सामान्य हो गया था। समय अपनी गति से आगे बढ़ता चला जा रहा था। रश्मि अपनी आगे की शिक्षा जारी रखे हुए थी। वह कॉलेज जाती शेष समय नौकरियों के इश्तिहार देखती।

''पापा, मुझे इसी शहर की एक निजी कम्पनी में नौकरी का प्रस्ताव आया है। मुझे वो नौकरी ठीक लग रही है। मैं वो करूँगी। साथ ही सरकारी क्षेत्र में किसी अच्छी जॉब के लिए भी प्रयत्न करूँगी।'' रश्मि ने अपनी बात दृढ़ता से कही। उसकी बातों में पूछने का नहीं, बताने का भाव था। रश्मि ने नौकरी ज्वाईन कर ली। वो दिन भर ऑफिस में काम करती। शाम को घर आकर कुछ देर आराम करती। फिर पढ़ने बैठ जाती। देर रात तक पढ़ती।

''ये लड़की घर के काम कब सीखेगी...?दिन भर ऑफिस में तथा शाम को भी पढ़ाई–लिखाई। घर के काम सीखना भी तो आवश्यक है। आख़िर लड़की की जात है। चाहे जितना भी पढ–लिख ले, घर के काम करने ही पड़ेंगे। रोटी बनानी ही पड़ेगी।'' रश्मि ऑफिस के लिए तैयार हो रही थी और पत्नी ने उसे सुनाते हुए कहा।

''बस माँ, मुझे कार्यालय के लिए निकलना है।'' माँ की बातों को अनसुना करते हुए रश्मि कार्यालय के लिए निकल पड़ी थी।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी मैं अपने उत्तरदायित्वों से निवृत्त नहीं हो पाया था। न तो बेटी का व्याह कर पाया था, न ही पुराने मकान की मरम्मत। रही बात बेटे की तो अभी उसकी शिक्षा पूरी नहीं हुई थी।

''पापा! मैंने नौकरी के लिए परीक्षा दी थी। उसमें उत्तीर्ण हो गयी हूँ। परसों मुझे साक्षात्कार के लिए चेन्नई जाना है।'' रश्मि ने कहा। और उसकी माँ मेरा मुँह देखने लगी।

''किस परीक्षा का इण्टरव्यू है बेटा?'' मैंने रश्मि से पूछा।

''बैंक का।'' रश्मि ने कहा और कार्यालय के लिए निकल गयी।

''ये लड़की न जाने क्या–क्या करती है।'' पत्नी ने कहा। पत्नी के चेहरे पर आयी प्रसन्नता के भाव मुझसे छुप न सके।

शाम को कार्यालय से आकर रश्मि ने सफर के लिए एक छोटा–सा बैग तैयार कर लिया। अगले दिन शाम को उसकी ट्रेन थी। रश्मि ने इन कार्यों में किसी की मदद नही ली। ट्रेन के समय के अनुसार वह बैग लेकर निकली। सड़क से ऑटो किया तथा स्टेशन के लिए चल दी। दो दिनों पश्चात् वो अपना साक्षात्कार देकर चली आयी और पुनः अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई। इस बीच हम कितने चिन्तित थे, ये हम ही जानते थे। रश्मि कार्यालय जाती, यदि समय हुआ तो घर के काम भी करती। इच्छा नहीं हुई तो स्पष्ट मना कर देती।

''सुनिये, रश्मि देर रात तक किसी से फोन पर बातें करती है।'' रहस्यमयी अंदाज़ में एक दिन पत्नी ने धीरे से कहा।

''बच्चे बड़े हो गए हैं। समझदार भी। वो जो कुछ करेंगे, सोच समझकर करेंगे। ''कुछ देर चुप रहने और सोचने के पश्चात् मैंने पत्नी से कहा।

लगभग डेढ़ माह के पश्चात् डाकिया घर में एक लिफाफा दे गया, तो रश्मि के नाम था। मैंने लिफाफा रश्मि की मेज पर रख दिया। शाम को रश्मि ने लिफाफा खोला।

''माँ..पापा! मेरी बैंक की नौकरी का अप्वाइंटमेंट लेटर है।'' रश्मि ने कहा।

''ये तो बड़ी अच्छी बात है।'' हम दोनों एक साथ बोल पड़े।

''कहाँ पर नियुक्ति हुई है बेटा?'' मैंने रश्मि से पूछा।

''कानपुर में!'' रश्मि ने कहा।

''अरे, दूसरे शहर में?वो तो यहाँ ये दूर है।'' रश्मि की माँ बोल पड़ी।

''ठीक है माँ, मैं मैनेज कर लूँगी।'' रश्मि ने दृढ़ता से कहा।

''दो–चार दिनों के अन्दर मैं नौकरी ज्वाईन कर लूँगी।'' रश्मि ने कहा और जाने की तैयारियों में व्यस्त हो गयी।

''कहाँ रहोगी?'' रश्मि को जाने की तैयारियों में व्यस्त देख, मैंने पूछा।

''मैंने रहने की व्यवस्था कर ली है पापा। कुछ दिनों तक वर्किंग वुमन हॉस्टल

में रहूँगी। बाद में सेपरेट व्यवस्था कर लूँगी।'' रश्मि ने कहा।

''माँ, आपलोग कहते हैं कि मैं लड़की की जात हूँ। हमारा समाज कहता है कि मुझे घर के काम सीखने चाहिए। दीदी को आपलोगों ने पढ़ाया–लिखाया, घर के काम भी सिखाये, किन्तु आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास के गुण विकसित नहीं किये, उस लड़की की जात में! आपलोगों को कदाचित् ज्ञात नहीं है कि दीदी कितनी परेशानी में जी रही है।'' रश्मि की बात सुनकर उसकी पत्नी आवाक् थी।

''ये क्या कह रही हो, हमलोगों को तो उसने कभी कुछ नहीं बताया।'' पत्नी के चेहरे पर सहसा पीड़ा उभर आयी।

''माँ, आप लोगों से उसने कुछ नहीं बताया, कदाचित् इसलिए कि वो मात्र लड़की की जात है। उसका अपना कुछ भी नहीं। न तो उसका जीवन अपना है, न भावनायें, न दु:ख, न ही उसका कोई अपना अस्तित्व। मेरे पास उसके फोन आते हैं। दीदी पढ़ी–लिखी है, घर के कार्यों में कुशल है, फिर भी उसका पति, उसके ससुराल के लोग उससे प्रसन्न नहीं हैं। मुझसे अपनी व्यथा कहते–कहते दीदी अक्सर रो पड़ती है।'' कहते–कहते रश्मि रूँआसी हो उठी।

'' इतनी परेशानी में है मेरी बेटी। काश! हमलोगों से भी वो अपना दुख बताती।'' पत्नी के स्वर पीड़ा में भीगे हुए थे।

''माँ, दीदी आपको और पापा को इस उम्र में कोई तनाव देना नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि कितनी कठिनाई और काफी पैसे खर्च कर आपलोगों ने उसके उत्तरदायित्व से मुक्ति पा ली है। वह आपलोगों पर पुन: अपना कोई उत्तरदायित्व डालना नहीं चाहती है। वह देर रात को अक्सर मुझे फोन करती है।'' रश्मि ने कहा। मैं और पत्नी चुपचाप रश्मि की बात सुन रहे थे।

''आपलोग लड़कियों को पढ़ा–लिखा तो देते हैं, किन्तु उन्हें पुष्पित–पल्लवित होने का अवसर नहीं देते। लड़की है, कहकर उसे दबा देते हैं और उसके विकास में अवरोध उत्पन्न कर देते हैं। आज यदि दीदी साहसी और आत्मनिर्भर होती तो उसका पति भी उसे योग्य और आधुनिक समझता। दीदी के पढ़े–लिखे होने के पश्चात् भी वो उसे कुछ नहीं समझता है। यदि ऐसा न होता तो उसे रात में अपनी छोटी बहन को फोन कर अपनी पीड़ा व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'' रश्मि की बातें सुनकर मुझे आत्मग्लानि होने लगी कि रात में फोन करने से हमलोग उसे न जाने क्या समझ बैठे थे। पत्नी के चेहरे पर पश्चाताप के भाव देखकर स्पष्ट था कि वो भी यही सोच रही है। तो रश्मि देर रात अपनी दीदी से फोन पर बातें किया करती थी।

''पापा! समय आने पर मैं विवाह भी करूँगी। लड़का आपकी पसन्द का हो या मेरी, उसे कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसे महिलाओं का सम्मान करना आना चाहिए। लड़कों की दोहरी मानसिकता नहीं चलेगी। पत्नी नौकरी नहीं कर रही है तो कोई उसे दो रोटी के बदले प्रताड़ित करे। यदि नौकरी कर रही हो तो उसे चरित्रहीन कहे और उसके पैसों का उपभोग भी करे। ऐसे लड़के से विवाह मैं कतई नहीं करूँगी।'' रश्मि कहती जा रही थी और मैं उसका मुँह देखता जा रहा था। कितनी समझदार हो गयी थी रश्मि।

दो दिनों पश्चात् रश्मि नौकरी ज्वाइन करने के लिए निकलने वाली थी। उसने अपने साथ ले जानेवाले आवश्यक सामानों की एक अटैची तैयार कर ली थी।

''बेटा! हम भी तुम्हें छोड़ने स्टेशन तक चलेंगे।'' मैंने रश्मि से कहा। आज रश्मि जाने वाली थी।

''पापा, मैं चली जाऊँगी। आप और मम्मी नाहक परेशान होंगे।'' रश्मि ने कहा।

''नहीं बेटा! माता–पिता बूढ़े हो जाते हैं, तब भी उनमें इतनी हिम्मत शेष रहती है कि आवश्यकता पड़ने पर बच्चों के साथ ढाल बनकर खड़े हो सकें। मैं तुम्हारी दीदी से भी बात करूँगा। कहूँगा नि:संकोच वो अपनी समस्यायें हमलोगों को बताये। उसे जो भी सहायता हमलोगों से चाहिए, वो सब हम उसे देंगे। हमारा उत्तरदायित्व उसका विवाह करने तक नहीं, उसे सुखी देखने तक है।'' मैंने रश्मि से कहा।

''पापा! एक और बात आपसे कहनी है। भाई की पढ़ाई और करियर पर जो पैसे लगे, लगा दीजिए। यही समय है उसके लिए कुछ करने का।'' रश्मि ने कहा। उसकी बात सुनकर सहमति में सिर हिलाते हुए मैं मुस्करा पड़ा।

''सुनिये, रश्मि कितनी समझदार हो गई है। उसे मात्र अपनी ही नहीं, हम सबकी फिक्र है। उसके बारे में मैं कितनी ग़लत थी।'' रश्मि को ट्रेन में बैठाकर हम दोनों वापस ऑटो से घर आ रहे थे, तब मार्ग में पत्नी ने कहा।

''हाँ..हूँ..।'' अपने विचारों में खोया हुआ मैं पत्नी की बातों का बस यही उत्तर दे पा रहा था।

दरवाजे पर ऑटो से उतरते हुए मैंने अपने घर को देखा। आज मुझे अपना घर नई ऊर्जा व रंगो से सजा हुआ लग रहा था। जब भी इसे नया करने की आवश्यकता होगी, बच्चों की पसन्द के रंगों से सजा लूँगा। अभी बच्चों के जीवन में सफलता के रंगों का होना आवश्यक है। लड़की की जात, मेरा गर्व, मेरी बेटी रश्मि ने मुझे सही मार्ग दिखाया है।

रचनाकारों से अनुरोध

सभी सम्माननीय रचनाकारों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मिडिया के किसी मंच जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें प्रकाशन हेतु नहीं भेजें।

इस प्रकार की रचनाओं को प्रकाशित नहीं किया जाएगा।

सादर संपादक मंडल

कहानी

मनहूस साया

जयन्त
महेन्दू पटना
9430060336

खोखन ने अपने बड़े बेटे चंदू का विवाह किया और बहू घर आ गयी, तो वह और उसकी पत्नी प्रसन्न हुए।

अबतक दोनों पुत्रियों का विवाह हो जाने और उनके ससुराल चले जाने के कारण घर सूना लगता था। बहू के आ जाने से पोता–पोती आयेंगे और आंगन में फिर से किलकारियाँ भर जाएँगी, ऐसा वे सोच रहे थे। छोटे बेटे नंदू की उम्र तेरह–चौदह की थी और उसके विवाह में अभी देरी थी। खोखन के मकान का कुछ भाग छप्परवाला है और एक कमरे के साथ लगा बरामदा लकड़ी के ऊपर ईंटों को पाटकर बनाई गयी छतवाला है। घर के चारों तरफ उसने स्वयं अपने हाथों से बाँस का घेरा तैयार किया है और पिछवाड़े के फाटक से वह अपने छोटे बेटे नंदू यानी नंदन के साथ खेतों पर काम करने चला जाता है, बड़े बेटे का नाम चंदन है और सब उसे प्यार से चंदू बुलाते हैं। उसे खेतों का काम पसंद नहीं आया और उसने बिजली मिस्त्री का काम सीख लिया। रेलवे लाइन के किनारे बसे इस घनी आबादी वाले कस्बे में उसका काम अच्छा चलता था और आमदनी भी अच्छी हो जाती है।

घर में एक स्त्री की आवश्यकता खोखन और उसकी पत्नी महसूस कर रहे थे और जब परिचित परिवार से गौरी का रिश्ता चंदन के लिए आया, तो उन्होंने इसपर सोच–विचार किया। लड़की का घर दो स्टेशन बाद था और जिस परिवार के माध्यम से रिश्ता आया था, वह उस परिवार की भतीजी लगती थी। विवाह सरलता से तय हो गया और खोखन के परिवार से कोई माँग न रखी गयी। हाँ, लड़की के पिता ने सामान्य लेनदेन के अलावा एक बढ़िया टेलीविजन सेट और चंदन के लिए एक बाइक भी दी। खोखन ने एक ही माँग रखी कि लड़की को तीन महीने के अंदर विदा करना होगा, जिसे लड़की के पिता ने मान लिया।

बहू विदा होकर ससुराल आ गयी। गौरी ने आते ही घर को संभाल लिया। सभी उसके व्यवहार से प्रसन्न थे। पंद्रह दिनों बाद चंदू को एक बड़ा काम भी हाथ लगा, लेकिन अगले ही दिन नंदू को तेज ज्वर ने धर दबाया। ज्वर नहीं उतरा और साधारण दवाइयों से काम न चला, तो डॉक्टर से दिखाया गया। डॉक्टर ने जाँच लिख दिये। जाँच से पता चला कि पेट के अंदर और लीवर में सूजन है। उसे ठीक होते दो महीने से ऊपर लग गये। अगले ही सप्ताह खोखन की पत्नी यानी चंदू की माँ को अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। डॉक्टरों ने बताया कि पेट में ट्यूमर था और जल्दी ऑपरेशन करा लेना ही उचित था। खोखन और उसके बेटे करते भी क्या? डॉक्टरों के अनुसार ऑपरेशन कराया गया और ठीक होते दो–तीन महीने लग गये। चंदन की माँ ने कहना शुरू कर दिया कि जब से गौरी आयी है, तबसे यह समस्याएँ चल रही है और उसका आना शुभ नहीं है। गौरी ये बातें सुनती और आँसू बहाती।

लोगों ने सलाह दिया कि बहू को कुछ दिनों के लिए नैहर भेज देना ठीक रहेगा। उनका मानना था कि बहू गलत मुहूर्त में विदा कर लायी गयी है। सबों की बात मानकर चंदन गौरी को उसके नैहर पहुँचा आया, परन्तु घर में समस्याएँ कम नहीं हुईं। आए दिन कोई–न–कोई समस्या बनी रहती। विवाह के एक वर्ष हुए और गौरी ने नैहर में एक पुत्र को जन्म दिया।

खोखन ने पत्नी से विचार किया कि पोता हुआ है और बहू को ले आना ठीक रहेगा। चंदन की माँ ने बिगड़कर कहा–'जब से आई है, तबसे सारा उठापटक चल रहा है।'

'उसकी वजह से उसे छोड़ा तो नहीं जा सकता ना?–बहू है, लोग पोते को देखने के लिए तरसते हैं। लाना तो पड़ेगा, लोग समाज क्या कहेगा?'–चंदन बोला।

'तू जोरू के लिए उतावला हो रहा है?'

'माँ.....?'

'तू चूप रह।'...खोखन ने बेटे से कहा।

'देखो जी! जबसे वह घर में आयी है, बर–बीमारी का सिलसिला चल रहा है। घर में कंगाली घुस गयी है। उसके बाप ने पहले ही कुछ नहीं दिया था। शादी–ब्याह में अलग खर्च हुआ। फसल अलग मारी गयी। कर्ज सिर पर चढ़ा हुआ है। मैंने तारक बाबा को दिखाया था। वे भी कहते हैं कि इस लड़की का साया मनहूस है।'

'तो तुम ही बताओ, क्या करें?'

'मेरी मानो तो चंदन का दूसरा ब्याह कर दो।'

'यह नहीं होनेवाला।'–चंदन के बिगड़कर कहा।

'क्या कहकर दूसरा ब्याह करेंगे? अब तो एक लड़का भी है। बीमारी तो किसी को हो सकती है?'

'ठीक है बाप–बेटा मिलकर उसे ले आओ। मुझे उसके साथ नहीं रहना। चूल्हा–चौका अलग कर दो मेरा, नंदू मेरे साथ रहेगा।'

खोखन ने विवश होकर बेटे को पक्कावाला कमरा और बरामदा दे दिया। चंदन गौरी को विदा कराकर ले आया, अधूरे मन से ही चंदन की माँ ने पोते को गोद लिया। जब गौरी को पता चला कि उसके कारण चंदन को अलग होना पड़ा है, तो वह रो पड़ी। पास पड़ोस में चर्चाएँ होती हैं। कुछ चंदन की माँ को गलत ठहराते, तो कुछ यह कहकर सही ठहराते कि एक ना एक दिन तो अलग करना ही था। चंदन थककर लौटता तो गौरी अपना दुखड़ा सुनाती, रोती और कलपती। सब कुछ सुनकर वह उदास हो जाता।

विपत्ति अकेले नहीं आती। अभी बच्चा दो ही महीने का हुआ था कि उसे ज्वर हो गया। चंदू भयभीत हो गया कि क्या बात हो गयी? प्राइवेट डॉक्टर और क्लीनिक तो थे, परन्तु इतने पैसे कहाँ थे कि वह वहाँ जा पाता। उसके एक साथी ने बताया कि सरकारी अस्पताल में एक नई डॉक्टरनी आयी है, जो बड़ी अच्छी है। वे सब उसे वहीं ले गये।

बच्चे को भर्ती करना पड़ा। दो दिनों में ज्वर तो उतर आया, परन्तु बच्चे के सिर में सूजन हो गयी। चार दिनों में सूजन बढ़ गयी और सिर काफी फूल गया। बच्चे के खून का जाँच करवाया गया। रिपोर्ट आ गयी तो डॉक्टरनी ने चंदन को अपने कक्ष में बुला लिया और समझाया कि इस बीमारी का नाम हाइड्रोसिफेली है और इससे पीड़ित बच्चे प्रायः नहीं बचते हैं। फिर भी वह इसे दिखाने कहीं और ले जाना चाहे, तो ले जा सकता है। चंदन की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। इस बीमारी का तो उसने नाम तक नहीं सुना था। उसने निराशा से कहा कि वह बहुत गरीब है, उसके लिए बच्चे को कहीं ले जाना संभव न था। डॉक्टरनी ने उसे फिर समझाया–'देखिए, इसका कोई विशेष इलाज भी नहीं है, यहाँ लंबे समय तक रखना भी संभव नहीं हो पाएगा।'

'हमलोग बहुत गरीब हैं...मैडम! कोई सहायता करवा दीजिए।...कैसे भी ठीक कर दीजिए। मैं उसे कहाँ ले जा सकूँगा?'

'देखिये, जो बात थी मैंने बता दी। यहाँ इस छोटी जगह में इस बीमारी का कोई इलाज संभव नहीं है। रही मदद की बात तो कोलकाता के एक कॉलेज से मैंने डॉक्टरी पढ़ी है। आप वहाँ जाइए तो बात बन सकती है, लेकिन....

।'–डॉक्टरनी ने उसकी ओर देखा।

'लेकिन क्या..?'–चंदन के मन में आशा की ज्योति जगी। 'वे लोग इस शर्त पर बच्चे को अस्पताल में रखना चाहेंगे कि यदि बच्चा नहीं रहा तो आपलोगों को बच्चे का शरीर उन्हें सौंपना होगा, ताकि वहाँ पढ़ रहे डॉक्टर इस बच्चे के डेड बॉडी यानी मृतशरीर से पढ़ सकें, कुछ सीख सकें।

'ऐसा कैसे हो सकता है?'

'सोच लीजिए, वे बदले में अच्छी रकम भी देंगे। बड़ा अस्पताल है, शायद आपका बच्चा वहाँ जाकर ठीक हो जाए।... आने–जाने और वहाँ रहने में खर्च हो सकता है; परन्तु इलाज में ज्यादा खर्च नहीं होगा।'

चंदू ने गौरी और अपने पिता खोखन को सारी बात बतायी। निश्चय हुआ कि बच्चे को वहाँ ले जाना ही ठीक रहेगा। गौरी की माँ और पिता भी साथ गये। बच्चा करीब पाँच महीने तक जीवित रहा और फिर एक दिन अपनी आँखें हमेशा के लिए बंद कर ली। अस्पताल के डॉक्टरों ने उन्हें समझाया कि अगली बार भी गौरी को बच्चे की पैदाइश के समय वहीं ले आना उचित होगा। उन्हें संदेह था कि अगला बच्चा भी जन्म से विकृत हो सकता है। चंदन ने रोते–रोते बच्चे के शरीर के बदले में मिले रुपयों को देखा, पैसे कम नहीं थे। उसे उसने अपने पिता खोखन के हाथों में रख दिये। खोखन भी रो पड़ा।

खोखन ने उन रुपयों से कर्ज चुकाया, फिर भी काफी रुपये बच गये, जो उनकी गरीबी के लिए पर्याप्त थे। खोखन ने चंदन की माँ को फिर से समझाया कि बहू को साथ रख ले; परन्तु वह नहीं मानी।

तीन महीने गुजरे थे कि गौरी फिर से गर्भवती हुई। अर्थाभाव में चंदन उसे कोलकाता तो नहीं ले जा सका; परन्तु महीने पूरे होने पर उसी सरकारी अस्पताल में वह उसी डॉक्टरनी के पास ले गया। डॉक्टरनी को भी संदेह था कि इस बच्चे को भी वही बीमारी हो सकती है या फिर कोई और अन्य समस्या आ सकती है। वह भी चाह रही थी कि गौरी को कोलकाता ले जाया जाता तो अच्छा रहता। परन्तु गौरी की स्थिति भी ऐसी नहीं थी कि उसे कहीं ले जाया जा सके। बच्चे को ऑपरेशन द्वारा तुरंत निकाले जाने की आवश्यकता आ पड़ी। ऑपरेशन हुआ और सारी आशंकाओं को झूठलाते हुए गौरी ने एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया। नर्स ने ऑपरेशन थिएटर से बाहर आकर यह सूचना दी तो सभी प्रसन्न हुए। थोड़ी देर में डॉक्टर भी बाहर निकल आयी और उसने भी बताया कि बच्चा तो स्वस्थ है; परन्तु... गौरी नहीं बच सकती। चंदन फूट–फूट कर रो पड़ा और खोखन ने सिसकते हुए कहा–'मनहूस साया चला गया।'

ग़ज़लें

शशि आनंद 'अलबेला'
बरियारपुर (मुंगेर)
मो०–7463858017

क्या चलन कैसी रिवायत हो गई है
हर तरफ वहशत की वहशत हो गई है

हो गया आजाद पिंजरा से परिंदा
आसमां में तो बगावत हो गई है

कल तलक जिसने चलाया तीर तिकड़म
आज उस कुनबे में दहशत हो गई है

अब सियासत पर यहीं कैसे करें हम
झूठ ही जिसकी इबादत हो गई है

इस कदर आकाश में है धूम पसरा
धूप भी उसकी वसीयत हो गई है

2
हादसा कोई बड़ा होकर रहेगा
क्या पता कैसा यहां मंज़र रहेगा

है गज़ब उन्माद पर सैलाब यह तो
अब नदी के बीच मेरा घर रहेगा

आपकी बातें हलक में ही रहेंगी
सामने कोई लिए नश्तर रहेगा

मुफलिसी की गर कभी बातें करेंगे
बदजुबानी का यक़ीनन डर रहेगा

चल रहा है काल का कुछ चक्र ऐसा
दो दिलों के दरमियां खंजर रहेगा

3
हो अगर ये चाहतें बेनाम लिख देना
इक ग़ज़ल यूं तुम हमारे नाम लिख देना

बेकसों की भूख पर रोती सियासत है
इस सियासत को अजी गुलफाम लिख देना

नित नया कोई तमाशा, है फ़क़त भाषण
तुम फ़रेबी भाषणों को आम लिख देना

दर्द के मारे अकिंचन हो गया बेबस
बेबसी का फिर कोई उपनाम लिख देना

अलहदा है सोच उसकी है गजब नीयत
फिर हमारे नाम तुम इल्ज़ाम लिख देना

4
आंख कुछ पल के लिए यूं नम हुई होगी
या किसी की याद में शबनम हुई होगी

हर तरफ वीरान है, मायूस है मंज़र
अब यहां तो चोट भी हमदम हुई होगी

मुस्तहक़ कोई व्यवस्था हो यहां फिर से
जी यक़ीनन बेबसी बेदम हुई होगी

खुशनुमा ये दौर कैसा, है खुशी कैसी
कुछ सियासत आजकल सरगम हुई होगी

कहानी

फूटपाथ पर जिंदगी

रामनगीना मौर्य
5/348 विराज खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)
मो.–9450648701

''अरे भई! खाने–पीने की चीजों को लेकर इतना क्या मगजमारी करना? अब दिल्ली से बस निकल लीजिए। सुबह यहाँ से जितनी जल्दी निकलेंगे, लखनऊ उतनी ही जल्दी पहुँचेंगे।'' मैंने तनिक झुँझलाते हुए कहा।

''सही कहा सर आपने, फिर गाड़ी भी तो है अपने पास। रास्ते में खाने–पीने के दसियों ढाबे मिल जायेंगे। ज्यादा भूख महसूस हुई तो कहीं भी रुककर कोई फल या बन–मक्खन वगैरह कुछ भी खा–पी लेंगे...हें–हें–हें।'' मेरे सहकर्मी संतोषजी ने मेरी बात पर हामी भरते, ड्राइवर को आग्नेय नजरों से देखा, जो सुबह–सुबह बिना कुछ खाये–पीये कहीं के लिए भी न निकलने का रवायत पर कायम था।

हम सभी को सड़क–मार्ग से नई दिल्ली से लखनऊ जाना था। कड़ाके की ठंडक थी। सुबह के लगभग दस बज चुके थे। ड्राइवर महेश और सहकर्मी संतोषजी को लेकर गाड़ी में हम तीन जन सवार थे। हालाँकि ड्राइवर ने फिर भी नहीं माना। गेस्ट हाउस से निकलते ही वो अपने लिए पान–मसाला आदि खरीदने के बहाने मुख्य गेट के बगलवाली दुकान में चला गया। लौटते वक्त उनके हाथ में चिप्स के दो बड़े पैकेट, पानी के दो बोतलें और मूँग की नमकीन का एक पैकेट भी था।

''लीजिए सर जी! अगर रास्ते में कहीं जाम–वाम में फँस गये तो कम–से–कम भूखों तो नहीं मरेंगे। हमारे पास खाने–पीने के वास्ते कुछ तो रहेगा...हें–हें–हें।'' कहते उसने ये सारा सामान कार के पिछले हिस्से में डालते, ड्राइविंग सीट सँभाली। भीड़ और जाम के कारण दिल्ली से नोएडा तक आते–आते लगभग बारह बज गये। गुनगुनी धूप अब तेज हो चली थी। हमें अब भूख भी महसूस होने लगी। जाड़े के दिन में एक समस्या और भी होती है, खाली पेट सुबह–सुबह चाय पीने की वजह से बार–बार पेशाब की हाजत भी महसूस होने लगी थी। तिस पर गले में खराश होने के कारण थोड़े–थोड़े अंतराल पर मुझे थर्मस से निकालकर गुनगुना पानी भी पीना पड़ रहा था, जिस कारण भी मुझे लघुशंका की तीव्र हाजत महसूस हुई।

''महेश भाई! जरा कहीं वाजिव ढ़ीहा देखकर गाड़ी किनारे लगाना। थोड़ा–थोड़ा वजन हल्का कर लिया जाए। क्या पता, इससे पेट्रोल की खपत में कुछ फरक पड़ जाए...हें–हें–हें।'' मेरी मुश्किल को समझते हुए संतोषजी ने ड्राइवर को अपनी खास स्टाइल में हिदायत दी। अगले पाँच–सात मिनट बाद ही ड्राइवर ने सड़क किनारे गाड़ी खड़ी की। कार से उतरकर हम सभी अलग– अलग दिशाओं में बिखर गये और मूत्र–विसर्जन का सुख लेने लगे।

लघुशंका के बाद हम अपनी गाड़ी की तरफ लपके ही थे कि हमारी नजर सड़क किनारे फूटपाथ पर सजी कुछ दुकानों पर चली गयी। एक गुमटी में एक महिला कपड़ों पर इस्तरी कर रही थी। उसी के बगल गुमटी में बैठा एक दुकानदार, जिसके आगे रंग–बिरंगी लड़ियाँ लटक रही थीं, पान–सिगरेट आदि बेच रहा था। हमारी निगाह वहीं पास में ही खड़े एक ठेले वाले पर भी चली गयी, जो अपने ठेले पर ही गैस चूल्हे पर तवा रखे कुछ पका रहा था। हमने सड़क के उस पार ये सब उड़ती नजर देखा।

''सर जी! उधर देखिये, वहाँ से आपको भी कुछ ताजा– ताजा पकने की खुशबू आ रही होगी?'' ड्राइवर ने हमें गाड़ी में बैठने के लिए जाते देख उस ठेलेवाले की ओर मुखातिब हो हमें आवाज दी। हमने भी उधर ध्यान से देखा। वो ठेलेवाला शायद पराठें बनाने की तैयारी कर रहा था। पराटों के सिंकने की ताजी महक हमारे नथनुों में पड़ी। जाहिर है, इससे हमारी भूख के अहसास में और भी तीव्रता आ जानी थी।

''आइये सर! उधर ठेलेवाले के पास चलते हैं। चाय की बड़ी तलब लग रही है। क्या पता, वो चाय–वाय भी बनाता हो?'' संतोष जी मुझसे मुखातिब थे।

''हाँ–हाँ, क्यों नहीं? चाय तो जरूर पीयेंगे। हो सकेगा तो एक–एक बन–मक्खन या बिस्किट वगैरह भी खा लिया जाएगा। आगे एक्सप्रेस–वे पर पता नहीं कुछ खाने को मिले या न मिले।'' ये कहते ड्राइवर को भी हाँक देते, हम सड़क उस पार ठेले वाले की दुकान की तरफ आगे बढ़े।

ठेले के बगल ही बिजली के दो खंभों के बीच अलगनीनुमा बँधी नायलॉन की डोरी पर ढेर सारे रंगे–बिरंगे कपड़े सूख रहे थे। ठेले के पीछे की दीवाल से सटाकर लकड़ी का एक रैक पर साबुन, शैम्पू, पानी की बोतलें आदि रोजमर्रा की वस्तुएँ भी बिक्री हेतु करीने से सजाकर रखी हुई थी। ठेले के दोनों किनारों पर दो कुत्ते धूप सेंकते–ऊँघते नजर आये। हाई–वे होने के कारण थोड़े–थोड़े अंतराल पर हल्की–भारी वाहनें तेजी से धूल उड़ाती निकल रही थी।

''हाँ भई! चाय भी मिलेगी या सिर्फ पराठे ही बनाते हो?'' पास पहुँचकर संतोषजी ने उस ठेलेवाले से पूछा।

''बिल्कुल, चाय मिलेगी सर जी! हम पराठे भी बनाते हैं। हमारा गरमागरम पराठा खाकर देखिये न सर!'' उस बाइस– चौबीस साल के मासूम से दिखते ठेलेवाले युवक ने कहा।

''अरे, नहीं भई! हमें तो तुम केवल चाय पिला दो और कुछ बिस्किट–फिस्किट हो, तो वो भी दे दो। बन–मक्खन तो तुम रखे नहीं हो?'' मैंने पराठे खाने के प्रति अनिच्छा जताई।

''अरे, सर जी! आप मेरे आलू के ये गरमागरम पराठे, हमारे गाँव की बनी इस चटनी के साथ खाकर तो देखिये। मजा न आए तो कहिएगा।'' उसने इमर्तवान में रखी चटनी की ओर इशारा करते हुए कहा।

''अच्छा! कहाँ है तुम्हारा गाँव?'' उसकी बोली–वाणी से हमें उसके पूर्वी अंचल के होने का आभास हुआ।

''जी, सर जी! बिहार के रहनेवाले हैं हम।'' उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

''बिहार में कहाँ के?'' मैं भी आरा का हूँ भाई!'' मैंने उससे आत्मीयता जताते हुए पूछा।

''जी, मोतीहारी।'' अपने बारे में बताते हुए ठेलेवाले की आँखों में आयी एक खास तरह की चमक को साफ–साफ महसूस किया जा सकता था।

''अरे वाह! तो मोतिहारी से इतनी दूर नोएडा में, आप क्या यही काम करने आये हैं?'' मैंने उत्सुकता जताई।

''नहीं सर जी! ये काम तो हमारे बाबू जी करते हैं। वो आजकल गाँव गये हुए हैं खेती–बाड़ी के काम से। आखिर, गाँव में खेती भी तो हमें ही देखना होता है न? इसलिए, कुछ दिनों से हम ही ये काम सँभाले हुए हैं।''

''अच्छा, तुम क्या काम करते हो?'' मुझे उसके बारे में जानने की

उत्सुकता बढ़ चली, सो उसकी बातों में दिलचस्पी भी होने लगी थी।

''हमारा पेंटिंग का काम है सर जी! मैं पेंटिंग करता हूँ ठीका पर। अभी महीनाभर से काम बंद है। लेबर लोग अपने गाँव गया हुआ है।'' उसने रटा–रटाया–सा जवाब दिया।

''सर! पराठा खायेंगे?बगल में पानवाला बता रहा है कि ये ठेलेवाले भाई आलू के पराठे बहुत बढ़िया बनाते हैं।'' हमारी बातचीत के बीच ही, उस ठेलेवाले ने तबतक गैस पर चाय का भगौना चढ़ा दिया था। उसे अदरक कूटते देख हमारे ड्राइवर महाशय बगल में ही पानवाले की दुकान से ये ताजा–ताजा ज्ञान प्राप्त कर हमसे मुखातिब हुए। बताता चलूँ, हमारे ड्राइवर महेश को ज्यादा बोलने की आदत नहीं है। वो बहुत कम शब्दों में ही काम निकालना जानता है।

''हाँ, हाँ, क्यों नहीं। पराठों की सोंधी–सोंधी सुगंध ही बता रही है कि पराठे जोरदार होंगे। क्यों सर! यहीं दो–दो गरमागरम पराठों का नाश्ता कर लिया जाए, फिर आगे का क्या भरोसा?पता नहीं, आगे ढंग का कुछ खाने–पीने को मिले–न–मिले?'' ड्राइवर की इस जिज्ञासा पर मैं कुछ कहता, इससे पहले ही हमारे सहकर्मी संतोषजी ने आगे बढ़कर सहमति दे दी।

''ठीक है, ठीक है। आप सब जैसा उचित समझें। वैसे..ये भी तो हो सकता है कि हम ये पराठे और चटनी वगैरह बँधवा लें। रास्ते में जब तेज भूख महसूस होगी, तब खा लिया जाएगा। क्यों, ये आइडिया कैसा रहेगा?'' चूँकि पराठों की सोंधी महक मेरे भी नथूनों में पड़ रही थी, जिस वजह से मुझे भी भूख की तीव्रता महसूस हो रही थी। फिर लंच का भी समय हो रहा था, वहीं सड़क किनारे से होकर एक पतली–सी नाली बह रही थी। आसपास की गंदगी देख खुले में खड़े होकर पराठे खाने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं हो रही थी। हालाँकि ठेलेवाले ने ठेले के ऊपर एक इमर्तवान उलटकर, उसके ऊपर धूपबत्ती भी सुलगा रखी थी, जिससे वातावरण सुवासित था। परन्तु सहकर्मियों की इच्छा देखते हुए इस अयाचित परामर्श के साथ पराठों के समर्थन में मैंने अपनी सहमति में सिर हिला दिया।

''अरे सर जी! जाड़े के इस मौसम में जो मजा गरमागरम पराठे खाने में है, वो ठंढे पराठों में कहाँ?'' कहते संतोषजी ने मानो मेरे सुझाव का हल्का विरोध किया हो।

''ठीक है भई! फिर जल्दी से बना दो हम तीनों के लिए दो–दो पराठे। लगता है आज इन गरमागरम पराठों पर हम खानेवालों का ही नाम लिखा है...हें–हें–हें।'' मैंने भी बिना उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये ठेलेवाले को ऑर्डर दिया।

''मुझे सुगर की दवा भी खानी है। गाड़ी में से लेकर आता हूँ।'' कहते संतोषजी कार की तरफ लपके।

''देखिये, आपके दवा खाने के नाम पर याद आई। मुझे भी बी.पी. की दवा लेनी है। मेरे बैग में ऊपरवाली जिप खोलिएगा, एक पत्ता दिखेगा, उसे लेते आइएगा। साथ ही पिछली सीट पर थर्मस में गुनगुना पानी भी रखा है, वो थर्मस भी लेते आइएगा।'' संतोषजी को कार की तरफ जाते देख मैंने उनसे अनुरोध किया। अगले ही पल संतोष जी अपनी और हमारी दवा लिये, थर्मस सहित हाजिर हुए। हम दोनों ने गुनगुने पानी से दवाइयाँ ली।

''सर जी! पहले ये अदरक, दालचीनी, कालीमिर्च वाली हमारी मसालेदार चाय तो पीकर देखिये। एकदम फर्स्टक्लास है कि नहीं?फिर मैं आपलोगों के लिए आजवाइन–मिक्स आलू के स्पेशल गरमागरम पराठे बनाता हूँ। आप सभी इत्मिनान से खाइएगा। देखिएगा, मजा आ जाएगा।'' कहते ठेलेवाले ने हमारे सामने तीन कुल्हड़ों में चाय ढाल दी।

ठेलेवाले की चाय हमें इतनी स्वादिष्ट लगी कि हमने उसके दो–दो गरमागरम मसालेदार चाय और पी ली। इस बीच तेजी से हाथ चलाते उसने अचार, चटनी, प्याज, हरी–मिर्च और दोने में आलू–गोभी की सब्जी के साथ हमारे सामने अखबार के टुकड़े पसारते उनपर एक–एक गरमागरम पराठे परोस दिये।

ठेलेवाले के पराठे बनाने का काम भी खासा कलात्मक था। वह यंत्रवत् गुँथे हुए आटे की लोई बनाता, उसे दोनों हथेलियों के बीच थपकी देते हुए बड़ा आकार देता, फिर उसमें मिक्स मसालेदार आलू भरते, उसे पीढ़े पर बेलते, उसमें परत–दर–परत घी लगाकर तवे पर डालने के बाद, धीमी आँच पर उलट–पलटकर सेंकता। पराठे बनाने की उसकी सारी प्रक्रिया हमें पूरी तरह यंत्रवत् और कलात्मक लगी।

''तुम्हारा नाम क्या है?'' मैंने पराठे खाते–खाते उसका नाम पूछा। ''जी, कन्हैया।'' उसने जवाब दिया।

''कितनी कमाई हो जाती होगी, यहाँ दिनभर में?''

''सर जी! भरती लागत काटकर देर रात तक काम करने के बाद, दिनभर में लगभग चार सौ रुपये के आसपास की कमाई तो हो ही जाती है।'' हम उससे बतियाते, पराठे खाते रहे। बीच–बीच में वो अपने गाँव से लायी चटनी भी हमारी माँग पर परोसता रहा। अगले पल ही उसने हमारे सामने एक–एक गरमागरम पराठे और भी रख दिये। हाई–वे पर आती–जाती, धूल उड़ाती गाड़ियों के शोर आदि को भूले हम उसके स्वादिष्ट पराठे लगभग मदहोश हो चटखारे लेते खाते रहे। उसके गरमागरम पराठे वाकई बहुत स्वादिष्ट थे।

इसी बीच हमने महसूस किया कि बगल की गुमटी में कपड़ों पर इस्तरी करती महिला का ध्यान भी हमारी बातचीत में ही था। काहे कि वो भी ठेलेवाले संग हमारी बातचीत सुन बीच–बीच में कनखियों से मुस्कुरा देती।

''और तुम्हारे घर में कौन–कौन हैं?यहाँ इस महानगरी में तुम्हारा खरचा–बरचा कैसे चलता है?'' बातचीत के बीच ही हमारी सहकर्मी संतोषजी भी विस्तृत जानकारी लेने के तईं, कन्हैया से बतियाने के मूड में आ गये।

''जी पत्नी है। दो छोटे–छोटे बच्चे हैं। पास में ही स्कूल है, वहाँ पढ़ने जाते हैं। पत्नी, आसपास की कॉलोनी में लोगों के घरों की धुलाई, इस्तरी करने वास्ते कपड़े ले आती है। उससे भी महीने में बारह–पन्द्रह सौ मिल जाते हैं। फिर पेंटिंग का तो मेरा काम है ही। हमें कौन–सा महल–अटारी बनवाना है। बस्स..इन्हीं सब काम–काज से हमारा और परिवार का खर्चा–बर्चा निकल जाता है।'' कन्हैया की बातों से उसके चेहरे से साफ झलक रहा था कि वह अपनी इस गर्वीली–गरीबी में बहुत खुश और संतुष्ट था। उसी बीच वहाँ के दो स्टुडेंट्स एवं गले में पहचान–पत्र लटकाए एक सज्जन भी आए। मैंने उत्सुकतावश उनके पहचानपत्र को पढ़ने की कोशिश की। वो एक बैंककर्मी थे। उन तीनों ने भी दो–दो गरमागरम पराठे, अचार, चटनी के साथ खाए। उन्होंने कन्हैया से बोतलबंद पानी माँगा, गटागट पीया और पराठों के दाम पूछे बगैर, पैसे चुकता कर ऐसे चलते बने, मानो वो उस ठेले पर पराठे खाने के लिए नियमित रूप से आते हों।

हमने एक अजीब बात और देखी। उसी मध्य एक निःशक्त सी बूढ़ी औरत नंगे पाँवों लाठी टेकते, जिसके हाथ–पाँव ठंढ से कंपकंपा रहे थे, जगह–जगह से फटी एक पुरानी कार्डिगन पहने हुई थी, वहाँ आयी। मैंने देखा कि कन्हैया ने अपने डोंगे में नीचे से तीन पराठे और दोनों में आलू–गोभी की सब्जी निकालकर एक प्लास्टिक के प्लेट में रखकर उसे दे दिया। तत्पश्चात्

वो बूढ़ी औरत वहाँ से प्लेट लेकर सधे कदमों थोड़ा आगे चलकर एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गयी और पराठे खाने में मगन हो गयी।

''तुमने उनसे पैसे नहीं लिये?'' मैंने उत्सुकतावश कन्हैया से पूछा।

''सर जी! हम उन बूढ़ी माई से पैसे नहीं लेते।'' कन्हैया ने संक्षिप्त–सा उत्तर दिया और पराठे बनाने के अपने काम में लग गया। कन्हैया की इस बात से मेरे मन में उसके प्रति अनायास ही सम्मान बढ़ गया। कहाँ तो दुनिया पैसे के पीछे मारामारी मचाए हुए है और कहाँ ये कन्हैया! मैं मन–ही–मन सोचने लगा कि दुनिया में कन्हैया जैसे लोग भी हैं, पर इनपर कितनों की नजर जाती होगी?कन्हैया के चेहरे पर आत्मतुष्टि, गर्वीली–गरीबी का भाव अभी भी बेतरह झलक रहा था।

''हाँ भई, कन्हैया जी! कितने पैसे हुए?'' हमने पराठे खत्म कर हाथ मुँह धोने के बाद, उससे पैसे पूछे।

''सर जी! एक सौ चौबीस रुपये।'' कन्हैया ने ऐसे बताया, मानो पहले से ही हिसाब लगा रखा हो।

''अरे भाई! छः चाय भी तो है?उनके पैसे भी जोड़कर बताओ।''

''हाँ, सर जी! पराठे, चाय सभी के पैसे जोड़कर ही बता रहा हूँ।''

''छः पराठे, इतनी सब्जी, ऊपर से चटनी, अचार और छः चाय के साथ एक सौ चौबीस रुपये ही?'' हम तो आश्चर्यचकित थे।

''हाँ, सर जी! मात्र एक सौ चौबीस रुपये।'' कन्हैया ने इत्मिनानपूर्वक ऐसे दुहराया, मानो उसे अपने हिसाब–किताब पर कोई शक न हो।

''अरे सर! इसमें इतना आश्चर्य–फाश्चर्य वाली कोई बात नहीं है। इन्हें कोई टैक्स–फैक्स तो देना नहीं होता, तो फिर पैसे क्यों ज्यादा लेंगे?लागत कम तो दाम भी कम।'' संतोष जी ने मेरी दुविधा समझते हुए मुझे अपनी ही स्टाइल में समझाना चाहा।

फिर भी...?छः स्वादिष्ट और गरमागरम आलू के पराठे, पेट पूरी तरह भर गया। ऊपर से चाय और ....इतना कुछ..?'' मैंने ध्यान दिया कि संतोषजी पर मेरी इन दुविधाओं का कोई असर नहीं हुआ। वो पर्स से रुपये निकालने में मशगूल थे। उन्होंने सौ और पचास रुपये दो नोट कन्हैया की ओर बढ़ा दिये।

बताता चलूँ। जितनी देर हमने पराठे खाये, कन्हैया पूरे मनोयोग से पराठे बनाता रहा। पराठे खत्म करने के बाद हाथ मुँह धोकर संतोषजी ने जब उसे पैसे देने चाहे तो उसने फौरन से पेशतर पराठे बनाना छोड़ अपनी दोनों हथेलियाँ बगल पड़ी बाल्टी से एक मग पानी निकालकर धोए और पैंट के पीछे अपने हाथ पोंछते–रगड़ते रुपये पकड़, उसे सिर माथे लगाते अपने गल्ले में रखा और बचे पैसे लौटाने के लिए पैंट की जेब से रेजगारी निकालकर गिनने लगा।

कन्हैया अभी हमें बाकी पैसे लौटाने की कवायद में लगा ही था कि तभी वहाँ खस–खर दाढ़ी–मूँछों में, आँखों में काला चश्मा चढ़ाए, उंगलियों में सुलगती हुई एक सिगरेट फँसाए, नाटे कद का एक गंजा, तोंदियल–सा आदमी प्रकट हुआ। उसने लगभग धमकी भरे स्वर में कन्हैया की ओर देखते छः पराठे पैक करने का ऑर्डर दिया। उसकी नजरें हम सबसे भी मिलीं। हमें अपनी तरफ घूरते देख, उसने भौंहे सिकोड़ते हमारी तरफ ऐसे देखा, मानो भूखा भेंडिया शिकार तलाशने निकला हो और उसकी चोरी पकड़ी गयी हो या हम उसे चुनौती दे रहे हो। मैंने ध्यान दिया कि काले चश्मे वाले उस आदमी के चेहरे, रग–रग से काइयाँपन झलक रहा था। मैंने ये भी महसूस किया कि उसे देखकर कन्हैया के चेहरे का रंग फीका पड़ गया था।

कन्हैया ने बड़ी तेजी से लगभग यंत्रवत् एक अखबार के टुकड़े में छः गरमागरम पराठे, अचार के साथ लपेटा। मैंने गौर किया कि कन्हैया जितनी देर पराठे, अचार आदि पैक करता रहा, वो आदमी ठेले के किनारे खड़ा, बेतहाशा सिगरेट फूँकता रहा। कन्हैया ने पराठों का पैकेट उसे जल्दी से पकड़ाया तो काले चश्में वाले आदमी ने उसे जिस अधिकार से थामा, उसे लगा मानो वो कन्हैया पर बड़ा भारी अहसान कर रहा हो। पराठों के पैकेट लेकर, सिगरेट का लंबा कश खींचते हुए, अपने पीछे धुँए का गुबार छोड़ते हुए वो आदमी उसी दिशा में निकल गया, जिधर से आया था। हमने ध्यान दिया कि उसे वहाँ से जाता देख, कन्हैया घृणा से कुछ बुदबुदाया भी था।

''तुमने उन साहब से पैसे नहीं माँगे?'' ये दृश्य मुझे कुछ अप्रत्याशित सा लगा। काले चश्मेंवाले की बॉडी लैंग्वेज, उसका व्यवहार, मुझे बेहद अटपटा–सा लगा था। उसके वहाँ से जाते ही मैंने कन्हैया से पूछा।

''सर जी! हमें तो लगभग रोज ही ऐसों से साबका पड़ता रहता है। यहाँ ठेला लगाने के लिए ये टैक्स जो भरना पड़ता है। इन्हीं लोगों की बदौलत तो हम यहाँ फूटपाथ पर ठेला लगा पाते हैं।'' कन्हैया ने बेहद मायूसी से उत्तर दिया था। ये कहते मानो उसका गला भर आया। उसका उत्तर सुनकर हम स्तब्ध रह गये। जैसा कि होता है, हर दिन हम नये अनुभवों, चुनौतियों से दो–चार होते हैं। आज का अनुभव ऐसा ही था। मानो कन्हैया की इस नियति को स्वीकार करने के अलावा हमारे पास कोई विकल्प ही न हो। मान–सम्मान, कर्तव्य–अधिकार, आशा–निराशा जैसे ढेरों शब्दों की मिली–जुली परिभाषाएँ मेरे जेहन में ऊभ–चूभ होने लगीं।

''अच्छा भई, कन्हैयाजी! हमें इजाजत दीजिए। अभी लखनऊ तक जाना है। आपके पराठे हमें ताउम्र याद रहेंगे।'' अब पराठे और उसके रेट पर ज्यादा मगजमारी न करके भावुकता भरे वातावरण में कन्हैया से विदा लेने के बाद, वापस हम अपनी गाड़ी की ओर बढ़ गये।

कन्हैया के गरमागरम पराठे खाने के बाद लखनऊ लौटते हुए पूरे रास्तेभर हम तीनों लगभग चुप ही थे। बावजूद तमामों तरह की विवशताओं के, हाई प्रोफाइल लोगों की तनावभरी जिंदगी से बेफिक्र, अपनी गर्वीली–गरीबी में मस्त, कन्हैया का मुस्कुराता बातूनी चेहरा, हमें बार–बार याद आ जाना। बेशक! हम तीनों के जेहन में कन्हैया की फूटपाथ की गर्वीली–गरीबी जिंदगी, उसके स्वादिष्ट गरमागरम आलू के पराठे, उसका मासूम–सा चेहरा बार–बार कौंध जाता।

दिल्ली से निकलते वक्त जहाँ हमारी बातचीत में फोन, ई–मेल, शेयर मार्केट, सेंसेक्स, टॉरगेट, कंपनी, बॉस, पॉलिसी, मौसम, टोल–प्लाजा, प्लॉन, बजट जैसी शब्दावलियाँ शामिल थीं, अब उनकी जगह, मंजिल, रास्ते, पड़ाव और कन्हैया की फूटपाथी जिंदगी की चुनौतियाँ, उसके आलू के गरमागरम पराठों ने ले लिये थे।

''सर जी! यहाँ पराठे खाने का हमारा निर्णय कैसा रहा?'' हमारे मितभाषी ड्राइवर महेशजी ने कार चलाते–चलाते सिर पीछे मोड़ते जैसे बीच राह हमारी तन्द्रा तोड़ी हो।

''भई! बहुत ही उम्दा। पराठे तो बहुत ही स्वादिष्ट थे। आज का दिन बन गया।'' कार की पिछली सीट पर बैठे–बैठे संतोषजी और मैं एक साथ बोल उठे। मानो हमने मन–ही–मन कन्हैया का शुक्रिया अदा किया हो।

कहानी

रुका न पंछी पिंजरे में

डॉ. चुम्मन प्रसाद श्रीवास्तव
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
भवंस मेहता महाविद्यालय, भरवारी
कौशम्बी मो. 7972465770

धनेसर को यह समझ में नहीं आ रहा है कि क्या हो गया है, जिसको देखो, वहीं मास्क लगाए हुए है। हर आदमी के चेहरे पर काला, नीला, पीला, हरा, सफेद, लाल कपड़ा न जाने कहाँ से आ गया है। ये सब लोग एकाएक डागडर वाला मास्क क्यों लगा लिये?पिछले साल होली के तीन दिन पहले साथ में काम करनेवाला अकरम का एक्सीडेंट हुआ था, तो देखा था डागडर बाबू लोग ऐसे ही लगाए हुए थे चेहरे पर। केवल आँख ही दिख रहा था। होली के पहले तो ऐसा कुछ नहीं था। इस बार होली में वह घर गया था और आते वक्त अपने इकलौते बेटे मोहित को भी साथ लाया था। मोहित की माँ कुसुमी मोहित के जन्म के सालभर बाद ही टायफायड से चली बसी थी। पूरे गाँव में वह दिनभर इधर उधर लफेरिया की तरह घूमता रहता। धनेसर की माँ पार्वती भी तो अब बूढ़ी हो गई है, कहाँ–कहाँ देखे उसे?कभी आम–अमरूद तोड़ने, तो कभी मछली पकड़ने, तो कभी गाँव के चरवाहों के साथ कबड्डी–चिक्का खेलने में मग्न रहता। इस साल जुलाई में पाँच साल का होनेवाला है।

फैक्ट्री के गेट के सामने ही नया–नया स्कूल खुला है। रामबरन कह रहा था कि नर्सरी से किलास पाँच तक बच्चों तक का सकुल है। रंगरेजी मेडियम में पढ़ाई होगी। उसने अपने बेटे रीतेश को नर्सरी में डाला है। फीस तो थोड़ा ज्यादा है, लेकिन बच्चे के केरियर को बनाने के लिए थोड़ा कष्ट उठा लेंगे। खर्चा में काट–कटौती करेंगे। अच्छा सकुल में पढ़ेगा तभी तो बाबू बनेगा। यहीं सब सोच–गुन कर वह भी अपने मोहित को लाया है। एक दिन नाइट ड्यूटी ऑफ में आकर पता लगाया तो साफ–साफ गोर–गोर मैडम जो काउंटर पर बैठती है, बोली–'बच्चा कितने साल का है?' तो बताया कि चार पूरा होई गवा है। जुलाई में पाँच साल का हो जाएगा। मैडम बोली थी कि ले आओ, अलकेजी में अगडमिशन हो जाएगा।

घर से यहाँ आया तो पता चला कि फैट्री बंद है। करओना नाम की कोई नयी बीमारी चली है, इसी कारण फैट्री बंद होई गवा है। अब धनेसर के लिए बड़ा ही लमहर मुसीबत आन पड़ा है। पहले गाँव–जवार से चार–पाँच मजदूरों के साथ रहता है, तो क्वार्टर भाड़ा भी कम पड़ता था, खाना–खुराकी भी कम लगता था। रामबरन से बात करने के बाद मोहित को यहाँ लाने को मन बनाया तो सोचा, बच्चा को पढ़ाना–लिखाना है तो क्वाटर सेपरेट होना चाहिए। यही सोचकर उसी मुहल्ले में एक कमरे का क्वाटर ढूँढा। लैट्रिन–बाथरूम शेयरिंग है। रूम बड़ा है, किचेन के लिए भी काफी जगह है। किराया सुनकर भी तिलमिला गया था, लेकिन बच्चे के कैरियर का सवाल है। सोचकर कहा–ठीक है साहेब!

धनेसर जनवरी से अपने नये क्वार्टर में आ गया। खाने–पीने का अपना अलग व्यवस्था कर लिया। एक फोल्डिंग चारपाई भी खरीद लाया। आखिर बच्चे को तो नीचे नहीं न सुला सकता है, वो भी पढ़नेवाला बच्चा। जनवरी से उसका दरमाहा एक हजार रुपये बढ़ा है। पहले साल सात हजार मिलता था, अब आठ हजार मिलेगा। इसी बल पर उसने सारा पिलान किया था। मगर भगवान को कुछ दूसरा ही मंजूर था।

धनेसर के नये मकान–मालिक प्रभु दयाल त्यागी मेरठ के रहनेवाले थे। गुड़गाँव में उनका इलेक्ट्रॉनिक की दुकान है। बारह कमरे और तीन लैट्रिन–बाथरूम उन्होंने बनवाया है। ज्यादातर यूपी–बिहार के मजदूर उनमें रहते हैं, कुछ परिवारवाले तो कुछ अकेले। प्रभु दयाल जी ने धनेसर को बता दिया था कि किराया एडवांस में देना होगा यानी फरवरी का भी किराया जनवरी में देना होगा। किराया तीन हजार रुपये प्रतिमाह तय हुआ है। जनवरी में आठ हजार रुपये तनख्वाह मिली, तो वह जनवरी–फरवरी के किराया और राशन–पानी में ही चला गया।

मार्च में होली की छुट्टी जाते समय ही उसे मार्च और अप्रैल का किराया चुकाना पड़ा था। घर से आते वक्त केवल एक हजार रुपये ही बचे थे। सोचा था, वहाँ गुड़गाँव फैक्ट्री पहुँचने पर सब ठीक हो जाएगा, लेकिन यहाँ तो सब कुछ बंद पड़ा है।

एक दिन घूमते–घूमते कॉन्वेंट की तरफ गया, तो देखा ताला लगा हुआ है। मोहित भी साथ गया था। बड़ा खुश था वह स्कूल जाने के नाम पर; लेकिन वहाँ मायूसी ही हाथ लगी थी। आते समय राशन दुकानवाले लाला रघुवंश अग्रवाल मिल गये। देखते ही बोले–'धनेसर! तुम्हारे नाम पर सात सौ रुपये बाकी है। दो महीने से ज्यादा हो रहे हैं, कब दोगे?'

'पा लागी लाला जी! फैक्ट्री खुलने तो दो, सब चुका देंगे। कभी मेरे ऊपर बकाया रहा है क्या?धनेसर ने पास आकर बोला।'

'सो तो ठीक है, लेकिन आजकल बड़ी कड़की चल रही है। कोरोना महामारी पूरे दुनिया में छायी गवा है–फैक्ट्री सब बंद हो गये हैं, न जाने कब खुलेंगे–सब मजदूर अपने गाँव जा रहे हैं। हमारी हालत भी पतली हो गयी है। प्रेम से दे दो, जो जबर्दस्ती करना ठीक नहीं लगता है।'

'हाँ–हाँ, ठीक है, ये लीजिए पाँच सौ रुपये। बाकी के लिए थोड़ा धीरज रखिए, वो भी दे दूँगा।' शर्ट के भीतरवाले पॉकेट से पाँच सौ का नोट निकाल लाला को थमाते हुए धनेसर ने नरम आवाज में कहा।

क्वाटर में जो राशन था, बड़े मुश्किल से सात दिन तक चला। अब आगे क्या होगा?कैसे चलेगा?धनेसर को कुछ समझ नहीं आ रहा था। रामबरन, अशरफ,मकेशर, फूलचंद, शशिभूषण, चंदेसर, गणेश–सब गाँव–जवार वाले बार–बार घर जाने की बात कर रहे थे। जब यहाँ फैक्ट्री बंद होई गवा है तो हमलोग यहाँ क्या करेंगे?जब सब कुछ सब जगह बंद है तो क्या किया जाए?सरकार टेलीविजन पर कह रही है कि घर से बाहर निकलो नहीं, नहीं तो कोरोना पकड़ लेगा। टी.वी. पर खबर देखकर बहुत डर लग रहा है। बाहर कोई काम नहीं, घर के अंदर खाने के लिए अन्न का दाना नहीं। ऐसे में कोरोना से मरे या ना मरे; लेकिन भूखे जरूर सब मर जायेंगे। सब मिलकर फाइनल किये कि जब मरना ही है, तो अपनी धरती पर मरेंगे। वहाँ एक–दो मुट्ठी जो भी मिल जाएगा, गुजारा कर लेंगे। जैसे पहले जीवन काटते थे, वैसे फिर काटेंगे। यहाँ परदेश में कोई पूछनेवाला नहीं, वहाँ तो अपना गाँव–समाज है। अपनी माटी की बात ही कुछ और होती है। मरने पर चार आदमी कंधा देनेवाला तो मिलेगा। यहाँ तो कुत्ता–कौवा की तरह भी पूछनेवाला कोई नहीं।

धनेसर बड़ा असमंजस में था। उसने पड़ोसी परमेसर के मोबाइल पर अपने माई से बात किया।

'प्रणाम माई!'

'खुश रह बेटा! युग–युग जी–अ।'

'माई! यहाँ तो फैक्ट्री बंद है। सब कुछ बंद है। यहाँ तक कि ट्रेन–बस तक बंद है। क्या करें?उस पर से मोहित भी साथ है। माई! कल से उसे बुखार है। कुछ समझ नहीं आवत है?'

'तू किसी तरह चली आव बेटा! मोहित का चेहरा मन में बिसरत नाहीं हवै। मोहित को देखने को मन छछनअ ता। तू बेकार ही मोहित को ले गइल। चली आव बेटा! कइसे भी चल आव, मोहिता को देखे बड़ी मन करत बा बेटा! मोहिता को ले आव बेटा, मोहिता को ले आव, ले आव!'

'ठीक है माई!' कहकर धनेसर ने फोन काट दिया।

गाजीपुर और बलिया के आस–पास के सभी मजदूर ने अपने गाँव जाने का निर्णय लिया। सब एक साथ मोटरी–गठरी बाँध चल पड़े। रास्ते में

मोहित बुखार में बड़बड़ा रहा था–दादी, दादी, दादी! उसका शरीर गर्म तवे की तरह तप रहा था। धनेसर उसे रास्ते में पारले–जी बिस्कुट देकर पानी पिलाता, फिर कंधे पर लाद चल देता। पूरा काफिला पैदल ही चल रहा था। ट्रेन–बस बंद, सारे साधन बंद, पूरा देश बंद; लेकिन इनको इनकी धरती बुला रही थी। वे चल पड़े थे एक जुनून के साथ अपने गाँव, अपनी धरती के लिए।

जहाँ एक ओर किराया न दे पाने के कारण घर से सामान बाहर फेंकने वाले गुड़गाँव के मकान मालिक थे, राशन का बकाया वसूलने के लिए मारपीट पर उतारू लाला साहू महाजन बनिया थे, वहीं इसी देश में राह चल रहे इन बेबस–मजबूर मजदूरों के लिए लंगर चला रहे लोग भी। रास्ते में जहाँ लंगर दिखता, वहीं काफिला रुक जाता। दयालु लोग अपने–अपने घरों से खाना बनवाकर लाते। भरपेट खिलाने के बाद रास्ते के लिए भी दे देते। आखिर यह देश राजा बलि, दानवीर कर्ण, महावीर जैन, गौतम बुद्ध, कबीर और नानक का देश है। खाने–पीने के साथ–साथ दवा–दारू की भी व्यवस्था कर रहे थे लोग। धनेसर ने मोहित को लंगर के एक सज्जन को दिखाया।

'अरे! इसका शरीर तो गर्म तवे की तरह तप रहा है। कुछ दवा दिया या नहीं।'

'साहेब! जो भी पैसा था सब राशन–पानी में खर्च हो गया। मकान–मालिक अगले महीने का किराया नहीं देने पर क्वाटर से निकाल दिया। जिस फैक्ट्री के नौकरी के भरोसे पर बेटे का लाया था, वहीं फैक्ट्री बंद हो गई। साहेब! क्या करें, कुछ समझ में नहीं आवत है।' धनेसर फफक–फफककर रोने लगा।

'चलो कोशिश करते हैं। हमारे पास जो दवा है, देते हैं; लेकिन स्थिति बहुत खराब हो गयी है। बचने का चांस बहुत कम है। दूसरे में कोरोना का ऐसा कहर है कि यदि गलती से पता चल जाए तो तुम्हें और तुम्हारे बच्चे दोनों को चौदह दिनों के लिए क्वारेंटाइन सेंटर में डाल देंगे।' उस सज्जन ने ठंढी साँस लेते हुए कहा।

उन्होंने दो टेबलेट को आधा–आधा टुकड़ा और एक टेबलेट पूरा मोहित को खिलाया। लेकिन दवा खाने के एक मिनट बात ही मोहित ने उल्टी कर दी। सज्जन अपना माथा पकड़कर बैठ गये।

धनेसर रोये जा रहा था। उस सज्जन ने धनेसर के बगल में बैठे अशरफ को अपने पास बुलाकर कहा–'देखो, तुम्हारा साथी का लड़का दो–तीन घंटे का मेहमान है। इसकी अंतिम घड़ी आ गयी है। इससे अपनी भाषा में समझाना कि रास्ते में यह किसी को पता न चलने दे कि इसके कंधे पर लदा चार साल का बच्चा मरा हुआ है। यदि किसी को पता चल गया तो बच्चे का चीर–फाड़ करेंगे और कम–से–कम चौदह दिनों के लिए क्वारेंटाइन कर देंगे। फिर तो घर जाना भूल ही जाना पड़ेगा। ठीक से समझ गये न!' इतना कह सज्जन अपनी आँखों में आए आँसूओं को पोछने लगे।

धनेसर अपने पीठ पर मोहित को लादे चल रहा था। अशरफ ने उसके कंधे पर हाथ रख कहा–'देखो, धनेसर भाई! खुदा की मर्जी के आगे किसी की नहीं चलती। शायद मोहित का तुम्हारा साथ इतने ही दिनों का हो। अगर मोहित चला जाता है, तो किसी को पता नहीं चलने देना, नहीं तो इसका मरा मुँह भी दादी नहीं देख पाएगी। यदि जरा भी भनक लग गया तो इसके शरीर को अस्पताल में ले जाकर चीर–फाड़ करेंगे ओर तुम्हें भी कम–से–कम चौदह दिनों के लिए क्वारेंटाइन कर देंगे। उस ऊपरवाले के आसरे ही हमलोग हैं। ध्यान रखना, धनेसर भाई!'

धनेसर को माई की बात याद आ गई–'मोहिता को देखे बड़ी मन करत बा बेटा! मोहिता को ले आव बेटा, मोहिता को ले आव, ले आव मोहिता को'

धनेसर ने मोहिता, मोहिता! पुकारा, लेकिन मोहित के शरीर में कोई हलचल नहीं थी। पिंजड़े का पंछी उड़ चुका था।

धनेसर और अशरफ दोनों सड़क किनारे झाड़ी में जा बैठे। मोहित को कंधे से उतारकर धनेसर ने नब्ज टटोला। नब्ज कब का बंद हो चुकी थी। वह पथराई आँखों से मोहित के शव को देख रहा था। वह एकाएक झोंके से उठा और मोहित के शव को अपने कंधे पर डाल चल पड़ा।

रास्ते में जहाँ कहीं भीड़ या पुलिस दिखाई देती, धनेसर के मुँह में जुबान आ जाती–'बेटे! अब बस दो दिनों में हम पहुँच जायेंगे अपने घर, दादी के पास।'

'हाँ–हाँ! दादी के हाथ का बना महुवे का हलवा खाना, हाँ–हाँ, खाना भाई, खूब जमके खाना।''

'क्या, मकई की रोटी, भैंस के दूध में चीनी मिलाकर खाओगे? ठीक है, खाना–खाना, नाक डुबो–डुबो के खाना।'

पाँच दिनों तक लगातार चलने रहने के साथ–साथ मोहित से बात करते–करते वह रास्ते में हुई मोहित की हृदयविदारक मृत्यु को बिल्कुल भूल चुका था। उसे लग रहा था कि मोहिता सोया हुआ है, बस!

घर पहुँचते ही धनेसर ने मोहित को खाट पर लिटा दिया और स्वयं धम्म से जमीन पर बैठते हुए बोला–'देखो माई! मैं ले आया तुम्हारे मोहिता को।'

खाट पर पड़े मोहित को हिलाते हुए बोला–'मोहिता! देखो, दादी–दादी, बात करो दादी से। पाय लागो अपनी दादी को, मोहिता! उठो–उठो। अब काहे नहीं बोलत हव, रास्ते में बहुत बात करत रह–दादी, दादी!

धनेसर का पड़ोसी परमेसर धनेसर की आवाज सुनकर आ गया। खाट से उठती सड़ायँध के भभका से मन मिचलाने लगा। उसने खाट के पास जाकर मोहित को ध्यान से देखा। वह बिल्कुल निस्पंद पड़ा था। उसके चेहरे पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। उसने मोहित के नब्ज को टटोला। हाथ बिल्कुल ठंढा था। उसे समझते देर न लगी कि मोहित को मरे हुए दो–तीन दिन हो चुके हैं। उसने धनेसर के कंधे पर हाथ रखकर कहा–'धनेसर भाई! मोहित मर चुका है। कैसे बोलेगा?'

'बाक पगला! मोहिता और हम रास्ते भर बात करते आए हैं। तोहे कोई भरम हुआ है। देखो–देखो–कैसा सुग्गा नियर नाक है, देखो–देखो–होंठ देखो, अरे! अभी नींद में है। तोहे पता नाहीं रास्ते में खूब बोलत रहे–दादी, दादी करत रहे। सो के उठिहैं तो अपने दादी के गोद में चली जैहैं। छोड़ द, सुतै द ओह के।' धनेसर एक रौ में बोल गया।

'माई! बड़ी भूख लगी है। कुछ खायके होये तो लाओ, माई!' कहकर धनेसर बाहर चापाकल पर हाथ–मुँह धोने चला गया।

'चाची! धनेसर तो पगला गया है। तुमको तो सुधी है, देखो, ई देखो, मोहिता मर गया है। हाथ पकड़ के देखो, नब्ज कबसे बंद पड़ी है, शरीर एकदम ठंढा है। आँख–नाक पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। अब तो सड़ायँध भी आने लगी है, चाची! परमेसर ने खाट पर पड़े मोहित का हाथ पार्वती के हाथ में देते हुए कहा।

पार्वती बार–बार मोहिता का नब्ज पकड़कर देखती है। नब्ज कब की बंद पड़ी है। कहीं लेशमात्र भी जीवन शेष नहीं है। उसका शरीर एकदम ठंढा पड़ चुका था। वह पछाड़ खाकर मोहित के शरीर पर गिर पड़ती है। 'ओ हमार मोहिता, रे मोहिता, तू तो दगा देकर चला गया रे, रे मोहिता!' बदहवास हो अपना सिर पटकने लगती है।

जैसे ही धनेसर आँगन में आता है, पार्वती उसके गले से लिपट बुक्काफाड़ कर रोने लगती है–'बेटा हो बेटा! मोहिता तो दगा देकर चला गया हो बेटा! मोहिता हम सबके छोड़के चला गया, हो बेटा! अरे मोहिता, रे मोहिता!'

'माई! तुम क्या कह रही हो? काहे रो रही हो? तुम भी लोगों के कहे में आ गयी। अरे! मोहिता बीमार था, इसीलिए नींद नहीं खुल रही है। चलो, ले चलते हैं डॉक्टर के पास। चलो, चलो।

वह झटके से मोहिता को उठाकर चल देता है। दो कदम चलने के बाद लड़खड़ाकर औंधे मुँह गिर पड़ता है। परमेसर दौड़कर उठाता है। सीधा करने पर देखता है कि उसके आँखों की पुतलियाँ उलट गयी हैं। शरीर बिल्कुल निस्पंद हो गया है। वह मोहिता को लाने मोहिता के पास जा चुका था।

यात्रा–वृत्तांत

विश्व गगन का प्यारा तारा : मॉरीशस

डॉ. पंकज साहा,
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
खड़गपुर, (प.बंगाल)
9434894190

विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी भाषा का सबसे बड़ा सम्मेलन के रूप में मान्य है। इसमें भाग लेने की इच्छा वर्षों से मन में उमड़–धुमड़ रही थी, पर बार–बार वह पुराने कार के इंजन की तरह घड़घड़ा कर रह जाती थी। मॉरीशस में 11वें विश्व हिन्दी सम्मेन की बात सुनकर इच्छा ने फिर अँगड़ाई ली। भाववृत्ति ने इच्छावृत्ति को उद्दीप्त किया। इच्छा ने कर्म करने की प्रेरणा दी और मैंने ऑन लाइन पाँच हजार रुपये भेजकर अपना पंजीकरण करवा लिया। कर्मवृत्ति आगे बढ़ी। मॉरीशस जाने–आने का हवाई टिकट एवं मॉरीशस में होटल भी बुक करवा लिया। परंतु प्रस्थान के दो दिन पहले वायरल फीवर ने मुझपर अटैक किया और मेरे दोनों घुटने जाम हो गये। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। विदेश जाने, हवाई जहाज में उड़ने के सपनों में ग्रहण लगने लगा। मेरा मूल दुख यह नहीं था कि न जा पाने से मेरे हजारों रुपये पानी में चले जायेंगे, बल्कि दुख का मुख्य कारण यह था कि उक्त सम्मेलन में पाठ हेतु मेरा आलेख स्वीकृत हुआ था और फेसबुक पर मेरे दर्जनों मित्रों ने मुझे बधाइयाँ एवं शुभकामनाएँ दे दी थीं। अपने गमों का बोझ उठा भी लेता, पर न जा पाने से मित्रों का गम मुझसे देखा न जाता।

आई.आई.टी खड़गपुर के वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी डॉ. राजीव कुमार रावत मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। उन्होंने साहस देते हुए कहा–''चलिए, जरूरत पड़ी तो आपको पीठ पर लादकर ले जाऊँगा।'' ऐसी नौबत नहीं आयी, पर संपूर्ण यात्रा में उन्होंने मेरा विशेष ध्यान रखना। सात दिनों की मेडिकल बीमा भी उन्होंने करवा दी।

मेरे चिकित्सक ने सात दिनों की कंप्लीट दवा दी। पत्नी ने एक पड़ोसन से प्रेरित होकर एक तांत्रिक बाबा से हजार रुपये में एक रक्षायंत्र (ताबीज) लाकर मेरी बाँह में बाँध दिया। इतने सुरक्षा–कवचों से लेश होकर मैंने खुद को बेहद सुरक्षित महसूस किया और 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने हेतु मॉरीशस के लिए प्रस्थान किया।

पहला झटका तब लगा, जब दमदम एयरपोर्ट पर सुरक्षा कर्मियों ने मेरी दवाइयाँ बैग से निकाल लीं एवं मेरा रक्षायंत्र खुलवा लिया। डॉक्टर की पर्ची दिखाकर दवाइयों की तो रक्षा तो मैंने कर ली, पर कोई पर्ची या प्रमाणपत्र न रहने के कारण रक्षायंत्र की रक्षा न कर सका। मन को समझा लिया कि जो रक्षायंत्र अपनी रक्षा न कर सका, वह भला मेरी रक्षा क्या करेगा?

विद्यालय की हिन्दी पुस्तक में डॉ. रामधारी सिंह दिनकर का मॉरीशस–यात्रा पर केन्द्रित एक लेख पढ़ा था 'हिन्द महासागर में छोटा–सा हिन्दुस्तान'। उस लेख ने मॉरीशस के प्रति उत्सुकता जगायी थी। मॉरीशस देखने के सपने का बीज–वपन उसी दिन हो चुका था। वह सपना साकार हुआ 15 अगस्त, 2018 को जब हमारा विशाल विमान मुंबई के अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे से लगभग 4700 कि.मी0 दूर इंद्रधनुषों, निर्झरों तथा टूटते तारों का देश मॉरीशस के सर शिवसागर रामगुलाम हवाई अड्डे पर अपने विशाल डैनों को फैलाये हुए उतरा। उस समय वहाँ के समयानुसार दिन के साढ़े ग्यारह बज थे। वर्षा थोड़ी देर पहले होकर हटी थी। धूप खिली हुई थी, परंतु हवा में थोड़ी ठंढक थी।

आरामदायक वैन से जब हम अपने होटल की ओर चले, तो सब खामोश थे। बीच–बीच में हमारे मुख से 'वाह! देखो कितना सुंदर पहाड़! देखो समुद्र! देखो गन्ने के खेत' जैसे शब्द निकल पड़ते। अचानक सड़क के किनारे एक ऊँची जमीन पर 11वें हिन्दी सम्मेलन के बड़े–बड़े होर्डिंग एवं भारत तथा मॉरीशस के झंडे देख हम खुशी से चिल्ला उठे। इसी खुशी ने वैन के अंदर की ठंढक में उष्मा का संचार किया। फिर तो ऐसे दृश्य बार–बार दिखे।

उस दिन हमारा देश आजादी की 72वीं वर्षगाँव का जश्न मना रहा था, परन्तु मॉरीशस में ईसा मसीह की माता मरियम का जन्म दिन होने के कारण छुट्टी थी। सर्वत्र सन्नाटा पसरा हुअ था। सारी दुकानें, कार्यालय बंद थे। इक्की–दुक्की गाड़ियों के अलवा दूर–दूर तक किसी आदमी की सूरत नहीं दिख रही थी। पशु–पक्षी भी नजर नहीं आ रहे थे। न तो कोई दूसरा आवारा कुत्ता दिखा और न गली क्रिकेट खेलनेवाले बच्चे। ऐसा लग रहा था मानो शहर में कर्फ्यू लगा हुआ हो। मैंने होटल के काउंटर मैन से पूछा तो उसने बताया कि यहाँ छुट्टियों में सारे लोग समुद्र किनारे चले जाते हैं। मैंने पूछा, 'पशु–पक्षी भी?' उसने हँसते हुए कहा, 'पक्षियों की संख्या यहाँ कम है। आवारा पशु बिल्कुल नहीं हैं। जो हैं, पालतू हैं।'

हमलोग मॉरीशस की राजधानी पोर्टलुई के ली सेंट जॉर्जेस होटल में ठहरे थे। मेरा कमरा तीन बिस्तरोंवाला था। मेरे साथ मेरे मित्र डॉ. दामोदर मिश्र, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर (प.बंगाल) एवं डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विश्वभारती, शांतिनिकेतन (पं.बंगाल) थे। हम तीनों अध्यापन से जुड़े हुए हैं। डॉ. राजीव कुमार रावत हिंदी अधिकारी हैं। वे डॉ. राजेश कुमार मांझी, हिन्दी अधिकारी जामिया मिल्लिया इस्लामिया (केंद्रीय विश्वविद्यालय), नई दिल्ली के साथ दूसरे कमरे में थे। यह बढ़िया कॉम्बिनेशन था। अध्यापक के साथ अध्यापक, अधिकारी के साथ अधिकारी। पर यह व्यवस्था सिर्फ होटल के कमरे तक सीमित थी। बाहर हम सभी थे एक ही यान की सवारी।

शाम में हमलोग टहलते हुए वाटर फ्रंट आदि देखने के लिए निकले। साफ–सुथरी चिकनी सड़कें। सड़कों पर कहीं कोई गड्ढा नहीं। सड़कों के किनारे ढँकी हुई नालियाँ। सड़कों के दोनों किनारे पर छोटे–बड़े विभिन्न प्रकार के पेड़। आम के पेड़ों में मंजरियाँ भी थीं और छोटे–बड़े टिकोले भी थे। हमारे देश में आम तौर पर जनवरी–फरवरी में आम के पेड़ों में मंजरियाँ आती हैं और जुलाई माह तक आम खत्म हो जाते हैं। ऐसा लगा मानो हमारे देश में जब आम के पेड़ों के सोने का वक्त आता है, तब मॉरीशस में आम के पेड़ जागते हैं।

किसी भी पेड़ के नीचे बिखरे पत्ते न के बराबर थे। ऐसा लगा मानो वहाँ के पेड़ भी अनुशासन में रहते हैं।

वाटर फ्रंट एक विशाल झील की तरह है। समुद्र के ज्वार का पानी वहाँ इकट्ठा हो गया है। कुछ स्टीमर भी वहाँ मौजूद थे। चारों ओर ऊँची–ऊँची सुंदर इमारतें, फैक्ट्रियाँ, खूबसूरत होटल्स देखकर सबों के हृदय में एक जैसा भाव जगा और सबों के मुख से लगभग एक जैसे शब्द निकले–वाह! अद्‌भुत! कितना सुंदर! स्वर्ग जैसा आदि–आदि। मैंने मॉरीशस के बारे में पढ़ा था कि मॉरीशस वास्तव में स्वर्ग जैसा है। अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने इसकी सुंदरता से मुग्ध होकर कहा था–''सृष्टिकर्ता ने मॉरीशस की रचना पहले की थी, फिर इसकी नकल कर स्वर्ग का निर्माण किया।''

नमस्ते रेस्टोरेंट से भोजन कर लौटते हुए काफी रात हो गयी। सन्नाटे की बिछी चादर पर एक और सन्नाटे के चादर बिछ गये। साफ–सुथरी सड़कें बिल्कुल वीरान। तभी एक कार आती दिखी। ट्रैफिक सिग्नल लाल था। कार तबतक रुकी रही, जबतक सिग्नल हरा नहीं हो गया। मेरे लिए यह अद्‌भुत बात थी। हमारे देश में सिग्नल न तोड़ने के लिए करोड़ों रुपयों के विज्ञान दिये जाते हैं। फिर भी लोग रात क्या दिन में भी सिग्नल तोड़ने से बाज नहीं आते। सैकड़ों लोग इसके लिए जुर्माना भी देते हैं और दर्जनों लोग मंत्री, नेता, अधिकारी,

पुलिस आदमी बताकर निकल भी जाते हैं।

दूसरे दिन हमलोग होटल के खूबसूरत एवं बड़े डायनिंग हॉल में पहुँचे। दूसरी ओर बरामदे में भी टेबुल–कुर्सियाँ लगी हुई थीं। बरामदे से सटा एक छोटा लेकिन साफ–सुथरा स्वीमिंग पुल था। नाश्ता कॉम्प्लिमेंट्री थी। नाश्ते में पच्चीस–तीस प्रकार के आइटम थे। विभिन्न प्रकार के ब्रेड, चपाती, पराठा, तड़का, सब्जी, खीर, मिठाई, कई प्रकार के फल जैसे–पपीता, केला, अंगूर, अनार, नारंगी, मौसमी आदि। इनके अलावा चाय, कॉफी और जूस। जो इच्छा एवं जितनी इच्छा ली जा सकती थी। कोई मनाही नहीं। हाँ, अतिरिक्त पानी के लिए पैसे चुकाने पड़ते थे। अपने देश में एक लीटर मिनरल वाटर की बोतल पर सामान्यतः पंद्रह या बीस रुपये एम.आर.पी छपा होता है। कोई–कोई दुकानदार अगर एक–दो रुपये ज्यादा माँग लेता है, तो झिकझिक शुरू हो जाती है। मॉरीशस में जिस होटल में हम ठहरे थे, वहाँ दो लीटर मिनरल वाटर की कीमत 70 मूर (लगभग एक सौ तीस रु.) थी। लोग चुपचाप दे देते थे। कोई झिकझिक नहीं। झिकझिक में क्या आनंद है, वहाँ जाकर जाना। मन में पैदा हुआ एक गाना–'ओ साथी रे! झिकझिक बिना भी क्या जीना।'

सम्मेलन की तिथि 18 से 20 अगस्त की थी। हमारे पास दो दिन मॉरीशस घूमने के लिए थे। हम बहुत उल्लसित थे। नाश्ता के बाद लगभग 15–16 लोगों का एक ग्रूप आरामदायक वैन में दर्शनीय स्थल देखने के लिए निकला। आयोजकों ने कमला कुंजल नामक भारतीय मूल की एक महिला को गाइड के रूप में भेजा। दरमियानी कद की कमला जी अत्यंत हँसमुख थीं। उनका रंग साँवला था, पर चेहरे पर पानी था। वह वाक्पटु पर मृदुभाषिणी थी। मॉरीशस की राष्ट्रभाषा क्रेयाल एवं अपनी मातृभाषा भोजपुरी में तो पारंगत थी ही, खड़ी बोली हिन्दी भी साफ एवं शुद्ध बोलती थी। उसने हमें बताया कि उनके पूर्वज बिहार के आरा से मॉरीशस आये थे और यह भी कि वह अक्सर भारत के दर्शनीय स्थल, विशेषकर तीर्थस्थानों में जाती रहती हैं।

हमलोग सर्वप्रथम पोर्टलुई में ही अवस्थित अप्रवासी घाट पहुँचे, लेकिन जब तेज बारिश शुरू हो गयी थी। तय हुआ कि इसे लौटते हुए देखेंगे। मॉरीशस का पम्प्लेस वॉटनिकल गार्डन अत्यन्त लोकप्रिय पर्यटन स्थल है। जब हम वहाँ पहुँचे, बारिश थम गयी थी, पर मौसम भीगा–भीगा था। यह गार्डन सर शिवसागर रामगुलाम वनस्पति उद्यान के नाम से भी जाना जाता है। सर शिवसागर रामगुलाम भारतीय मूल के थे। वे मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री थे। उनकी काफी बड़ी समाधि उद्यान के अंदर है। समाधि की सादगी बहुत कहानी कहती है। उद्यान बहुत बड़ा है। इसमें भाँति–भाँति के फल–फूलों के पेड़–पौधे हैं। विशाल जल लिली इस उद्यान का प्रमुख आकर्षण है। एक बड़े बाड़े में कुछ बड़े–बड़े कछुए थे, जिनमें कुछ की उम्र डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक थी। चीनी बनानेवाली आरंभिक मशीन देखकर मन कल्पना के पंखों पर सवार होकर अतीत की ओर उड़ गया और चीनी का उत्पादन करनेवाले मजदूरों के पुरुषार्थ को धन्य–धन्य कहने लगा।

उसके बाद हमलोग एक खूबसूरत समुद्र तट पर गये। कमला जी ने बताया कि अनेक भारतीय फिल्मों की शूटिंग यहाँ हुई है। तीन ओर से वह समुद्र तट बड़े–बड़े सुंदर होटलों से घिरा था। साफ–सुथरा तट। लगभग शांत नीला जल। तट पर बोटिंग हेतु नावें। बोट चलाने वाले लगभग सभी अफ्रिकन मूल के। सब हिन्दी समझते और बोलते भी थे। कश्मीर की डल झील में जैसे नाव चलानेवाले सैर करवाने हेतु मनुहार करते हैं, वैसे ही उन लोगों ने भी मनुहार करना आरंभ कर दिया था। हमारे ग्रूप के कुछ लोगों ने बोटिंग का आनंद लिया। समुद्र तट पर स्ट्रीट फूड की अनेक दुकानें थीं। मर्द–औरत मिलकर और कहीं–कहीं अकेले भी दुकान चलाते थे। पापड़ी चाट, चपाती, चावमीन, पानी पूड़ी, विभिन्न प्रकार के रोल के अलावा कुछ नॉनवेज आइटमों की दुकानें भी थीं। पापड़ी चाट, रोल आदि इतने स्वादिष्ट थे कि हमलोगों ने जी भरकर खाया। वही हमारा दोपहर का भोजन भी हो गया। उस तट पर हमलोगों ने पहली बार चार–पाँच श्वानों के एक झुंड को घूमते देखा। किसी गाय, घोड़ा, गदहा, बकरी को कहीं भी घूमते नहीं देखा। सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हुआ कि जबतक हम मॉरीशस में रहे, एक भी कौआ मुझे नहीं दिखा। हाँ, कुछ चिड़िया अवश्य दिखीं। मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी डोडो है, लेकिन अब एक भी डोडो मॉरीशस में नहीं है। कहते हैं कि डचों को इस पक्षी का मांस बहुत पसंद था, सो उन लोगों ने एक भी डोडो को नहीं छोड़ा।

और एक–दो जगहों को देखते हुए हम पुनः जब अप्रवासी घाट पहुँचे तो अपराह्न के लगभग साढ़े चार बज गये थे। म्यूजियम बंद हो चुका था। हमने वहाँ के अधिकारी से म्यूजियम को थोड़ी देर के लिए खोलने हेतु अनुनय–विनय किया। विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रतिभागी के रूप में भारत से आने की बात कहकर अप्रत्यक्ष दबाव भी डाला, पर अधिकारी टस–से–मस नहीं हुए। भारत होता तो उत्कोच का प्रलोभन दिया जा सकता था, पर वहाँ ऐसा करने की हिम्मत कोई नहीं कर सका। म्यूजियम को दूसरे दिन देखने का संकल्प लेकर हम अप्रवासी घाट की उन सीढ़ियों से नीचे उतरे, जिनपर चढ़कर कभी भारतीय गिरमिटिया (शर्तबंध) मजदूरों ने अपनी भाषा और संस्कृति के विरवे और अनगिनत सपनों के साथ मॉरीशस की भूमि पर कदम रखा था। नीचे उतरने के लिए पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही मैं रोमांचित हो उठा था। निश्चित रूप से जहाज से उतरकर उस सीढ़ी पर कदम रखते ही मजदूर भी रोमांचित हुए होंगे। पर मेरे और उनके रोमांच में जमीन–आसमान का फर्क था। मैं वहाँ दर्शके रूप में गया था, पर वे वहाँ सर्जक के रूप में आये थे। मेरे मन में उनके अतीत की कल्पना थी, जबकि उनकी आँखों में भविष्य के सपने थे।

पत्थर की बनी जेटी के समीप ही बड़े–बड़े हौज बने थे। कमला जी ने हमें बताया कि उन हौजों में कीटाणु मारने के लिए केमिकल युक्त जल होते थे। सीढ़ी से ऊपर जाने से पहले सभी मजदूरों को हौज में डुबकी लगवाकर सैनिटाइज करवाया जाता था। हमने वे छोटे–छोटे कमरे भी देखे, जहाँ उन्हें पशुओं की तरह ठूँसकर रखा जाता था। उनपर हुए अमानवीय अत्याचार के किस्से सुनकर आँखें भर आयीं, चेहरा गमगीन हो गया।

शाम ने भी अपनी मटमैली चादर फैलाकर हमारे गम में अपना साथ दिया। उसी समय अपने देश से आयी एक खबर ने हमें मानो दुखों के समंदर में ही फेंक दिया। हमारे कविहृदय पूर्व प्रधानमंत्री एवं सर्वप्रिय नेता माननीय श्री अटलबिहारी वाजपेयी के निधन की सूचना से हम बिल्कुल स्तब्ध रह गये। भारी मन से हम वहाँ से रुखसत हुए।

बाजार घूमने और कुछ खरीददारी करने का कार्यक्रम रद्द कर हमने पहले किसी भारतीय होटल में भोजन करने एवं अपने होटल पहुँचने का मन बनाया।

कमलाजी ने हमें हैपी राजा नामक इंडियन रेस्टोरेंट में ले गयी। वह एक विशाल मार्केटिंग कॉम्पलेक्स की दूसरी मंजिल पर था। उस कॉम्पलेक्स में तीन ओर विभिन्न प्रकारों की दुकानें थी। सामने विशाल पार्किंग जोन। पार्किंग जोन के बीच में एक गोल घेरे में बड़े–बड़े झंडे लहरा रहे थे। उस कॉम्पलेक्स को देखकर मुझे याद आया कि इस कॉम्पलेक्स को किसी हिन्दी फिल्म में देख चुका हूँ।

रेस्टोरेंट में अधिकतर विदेशी मूल के ग्राहक थे। अफ्रिकन मूल के लोग अपने काले रंग और मोटे होठों के कारण सहज पहचान लिये गये, पर जो गोरे लोग थे वे अंग्रेज थे या फ्रांसिसी, यह मैं समझ नहीं पाया। प्रायः सभी पुरुषों के साथ एक महिला थी। सब रह–रहकर शराब की चुस्की लेते और धीमे स्वर में बातें कर रहे थे। एक कोने में एक अफ्रिकी मूल का व्यक्ति अपने पूरे परिवार के साथ भोजन कर रहा था। रोशनी धीमी थी और धीमे स्वर में

पुरानी हिन्दी फिल्म का गाना बज रहा था। वह गाना ही मुझे वहाँ भारतीयता का अहसास करा रहा था। कमलाजी ने बताया कि मॉरीशस में भारतीय मूल के लोग पुरानी हिन्दी फिल्मी गानों के बहुत शौकीन हैं। वेटर के रूप में वहाँ कॉलेज में पढ़नेवाली उम्र की लड़कियाँ ही अधिक दिखीं। एक–दो को छोड़कर सब भारतीय मूल की ही दीख रही थीं। हम सोलह जन एक बड़ी टेबुल के इर्द–गिर्द बैठे। बैठते ही वेटरों ने हमारे सामने काँच की खाली गिलासें रख दीं। फिर पूरे टेबुल के बीचोंबीच स्टार्टर के रूप में तले हुए पापड़, पकौड़े, स्नैक्स, विभिन्न प्रकार की चटनियाँ रख दी गयीं। मैंने एक वेटर से पानी माँगा, तो उसने हिन्दी में पूछा, 'कितना लीटर चाहिए?' तब मैंने जाना कि हमारे देश की तरह वहाँ के होटलों में पानी मुफ्त नहीं मिलता है। हाँ, स्टार्टर मुफ्त में मिलता है और जितना चाहे, मिलता है।

आम तौर पर मैं धीरे–धीरे खाता हूँ, पर उस दिन स्वादिष्ट भोजन होने के बावजूद ज्यादा खा नहीं सका और जल्दी उठ गया। एक वेटर ने हाथ धोने की जगह पूछी तो वह खुद उस जगह तक ले गयी। वह दुबली–पतली हँसमुख लड़की थी। मैंने उससे पूछा, 'तुम्हारी उम्र तो बहुत कम लगती है, पढ़ाई नहीं करती हो?'

वह मुस्कुराकर बोली, 'कॉलेज में पढ़ती हूँ, पर पार्ट टाइम जॉब भी करती हूँ।'

'फिर पढ़ती कब हो?'

वह बोली, 'मैं सप्ताह में दो–तीन दिन ही केवल शाम के समय यहाँ आती हूँ। जब परीक्षा समाप्त हो जाती है, तो सप्ताह में पाँच दिन आती हूँ।'

'क्या जितनी लड़कियाँ यहाँ हैं, सब ऐसा ही करती हैं?'

'हाँ, लेकिन सिर्फ लड़कियाँ नहीं, अनेक लड़के भी कोई न कोई पार्ट टाइम जॉब करते हैं।'

'क्या सिर्फ वेटर की नौकरी मिलती है?'

वह बोली–'नहीं, रिसेप्सनिस्ट की, काउंटर क्लर्क की, शॉपिंग सेटरों में, दुकानों में सेल्स गर्ल या सेल्स मैन की भी।'

मैंने उससे पूछा–' क्या यहाँ के लोग हँसते नहीं हैं?मैंने यहाँ के लोगों को सिर्फ मुस्कुराते हुए देखा है। किसी को आधा इंच, किसी को एक इंच और हद से हद डेढ़ इंच तक। हँसना क्या यहाँ अपराध है?'

वह हँसी, फिर सकुचाकर बोली, 'अपराध तो नहीं है, पर यहाँ के लोग ठहाका मारकर हँसने को असभ्यता मानते हैं।'

मैंने मन–ही–मन सोचा, ऐसा है तो हमारे देश के कुछ वैसे लोगों का तो दम घुट जाएगा, जो बात–बेबात ठहाका लगाते हैं और वैसे लोग तो आत्महत्या ही कर लेंगे, जो पान–गुटका–खैनी खाकर जहाँ–तहाँ पीक फेंकते हैं या थूक देते हैं। यहाँ की संस्कृति तो हमारे देश की संस्कृति से बिल्कुल भिन्न है। परन्तु कमला जी ने बताया कि ऐसा केवल शहरों में है। भारतीय संस्कृति यहाँ के गाँवों में और सबसे बड़ी बात भारतीय मूल के लोगों के मन में निवास करती है। प्रसंगवश लोग यहाँ हँसते भी हैं और ठहाके भी लगाते हैं। हाँ, यहाँ–वहाँ थूकना यहाँ अपराध माना जाता है और पकड़े जाने पर जुर्माना भी देना पड़ता है।

बिस्तर पर लेटे–लेटे टूटते तारों के देश में उस रात अटल जी के एक गीत की कुछ पंक्तियाँ मन में गूँज उठीं–

टूटे हुए तारों से फूटे वासंती स्वर
पत्थर की छाती में उग आया नव अंकुर
झरे सब पीले पात
कोयल की कुहुक रात
प्राची में अरुणिमा देख पाता हूँ
गीत नया गाता हूँ।

उस रात कोयल की कूक भी सुनायी नहीं पड़ी, पर हृदय के किसी कोने से हूक अवश्य उठती रही।

सुबह प्राची की अरुणिमा में उदासी घुली हुई थी। उस दिन भी हमलोग मॉरीशस घूमने निकले, पर गत दिन जैसी प्रफुल्लता नहीं थी। उस दिन हमलोगों ने कई स्थलों का भ्रमण किया, जिनमें उल्लेखनीय है–कसेला नेचर एंड लेसुरे पार्क, केमेरल की रंगीन धरती, पेयरबेर बीच इत्यादि।

कसेला नेचर एंड लेसुरे पार्क एक जैविक उद्यान है। यह इतना बड़ा है कि इसे पूरा देखने के लिए एक पूरा दिन लग जाएगा। यहाँ बाड़े के अंदर शेर खुला घूमते हैं। कुछ कछुए इतने बड़े हैं कि बच्चे लोग उसपर बैठकर मस्ती करते हैं। केमेरल की रंगीन धरती अपने आप में एक अजूबा है। यह मॉरीशस के एक गाँव में अवस्थित है। यहाँ एक खास क्षेत्र में धरती सात रंगों में दिखाई पड़ती है। यों तो मॉरीशस चारो ओर से समुद्र से घिरा है। कहीं भी समुद्र में ऊँची लहरें नहीं उठती हैं। इसके सारे सी बीच सुंदर और स्वच्छ हैं। पेयरबेर बीच का पानी कंचन की तरह एकदम साफ था। किनारे से दूर तक साफ–सूथरा तल एवं तल में बिखरे कोरल आदि साफ दिखाई दे रहे थे। वहाँ वीकेंड में आस–पास के सारे लोग आ जाते हैं। समुद्र तट पर अनेक होटल एवं लॉज भी हैं, फिर भी बहुत लोग सपरिवार समुद्र किनारे टेंट लगाकर रात बिताते हैं।

शाम में गंगा तालाब में गंगा–आरती के कार्यक्रम में हम उपस्थित हुए। गंगा तालाब को वहाँ ग्रांड बेसिन भी कहा जाता है। यह मॉरीशस का अत्यन्त महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है। वहाँ भगवान शिव की 108 फीट ऊँची मूर्ति के अलावा देवी दुर्गा की भी बहुत बड़ी प्रतिमा है। वहाँ एक बहुत बड़ी झील है। ऐसी मान्यता है कि इसके जल का स्रोत भारत की पवित्र गंगानदी है। इसीलिए वहाँ के हिन्दू श्रद्धापूर्वक उसे गंगातालाब कहते हैं। तालाब के पास भव्य मंदिर है, जहाँ स्थापित शिवलिंग को त्रयोदश ज्योतिर्लिंग की मान्यता प्राप्त है। हर साल महाशिवरात्रि के शुभ अवसर पर वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।

गंगा–आरती में पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्रीकेशरीनाथ त्रिपाठी, गोवा की राज्यपाल एवं सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मृदुला सिन्हा, विदेश राज्यमंत्री जनरल (सेवा निवृत्त) वी.के. सिंह एवं कुछ अन्य गण्यमान्य व्यक्ति ने हिस्सा लिया। माननीय अटलजी के निधन के कारण तत्कालीन विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज नहीं आ सकीं।

सम्मेलन स्थल स्वामी विवेकानंद अंतर्राष्ट्रीय सभा केंद्र, पाय (मॉरीशस) में था, परन्तु सम्मेलन अवधि (18–20 अगस्त, 2018) तक सभा केंद्र एवं उसके आसपास के क्षेत्र को गोस्वामी तुलसीदास नगर नाम दे दिया गया था। सभागार की लॉबी में एवं अंदर हिन्दी के अनेक कवि लेखकों के कटआउट, तस्वीरें देख मन गद्‌गद हो गया। सम्मेलन स्थल पर विभिन्न सूचना केंद्रों के अलावा अनेक प्रकाशकों तथा भारत एवं मॉरीशस की संस्थाओं द्वारा पुस्तक प्रदर्शिनी लगायी गयी थी, जिनमें प्रमुख हैं–प्रकाशन विभाग, नेशनल बुक ट्रस्ट, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संस्थान, प्रभात प्रकाशन, हिन्दी प्रचारिणी सभा (मॉरीशस) आदि।

इस विश्व हिन्दी सम्मेलन में आयोजन भारत और मॉरीशस सरकार के संयुक्त तत्वावधान में हो रहा था। अतः दोनों देशों के अधिकारी, कर्मचारी मुस्तैदी से अपना कर्तव्य–पालन कर रहे थे।

सम्मेनल का मुख्य विषय था–'हिन्दी विश्व और भारतीय संस्कृति' और मुख्य उद्देश्य था–विश्वभर में हिन्दी का वैश्विक भाषा के रूप में प्रचार, वैश्विक स्तर पर हिन्दी में सृजनात्मक लेखन, शिक्षण तथा शोध को बढ़ावा देना, प्रौद्योगिकी, व्यापार, विज्ञान एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्रों में हिन्दी के

प्रयोग को बढ़ावा देना इत्यादि।

उद्घाटन सत्र में सर्वप्रथम दो मिनट का मौन रखकर माननीय स्व. अटल बिहारी वाजपेयी को श्रद्धांजलि दी गयी। विदेश मंत्री माननीया सुषमा स्वराज ने कहा–''इस सम्मेलन में दो भाव एक साथ उभर रहे हैं। पहला शोक का भाव और दूसरा संतोष का भाव। अटलजी के निधन पर शोक की छाया इस सम्मेलन पर है, किन्तु दूसरा संतोष का भाव भी है कि समूचा हिन्दी विश्व अटल जी को श्रद्धांजलि देने के लिए यहाँ एकत्र हैं।''

स्वागत भाषण मॉरीशस की शिक्षा मंत्री श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन ने दिया। मॉरीशस के प्रधानमंत्री श्रीप्रवीण कुमार जगन्नाथ ने उद्घाटन भाषण में भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्रीनरेंद्र मोदी के हिन्दी प्रेम की खासतौर पर प्रशंसा की। उक्त अवसर पर उन्होंने विश्व हिन्दी सम्मेलन पर दो डाक टिकट जारी किये एवं सम्मेलन की स्मारिक का लोकार्पण भी किया।

हिन्दी के महान साहित्यकार गोस्वामी तुलसीदासजी को सम्मान देने के लिए जहाँ संपूर्ण सम्मेलन स्थल का नाम तुलसीदास नगर रखा गया था, वहीं मुख्य सभागार का नाम मॉरीशस के महान साहित्यकार श्रीअभिमन्यु अनत के नाम पर रखा गया था। इसी प्रकार समानांतर कक्षों के नाम भी रखे गये थे, जैसे–सुरुज प्रसार मंगर 'भगत' कक्ष, भानुमति नागदान कक्ष, गोपाल दास 'नीरज' कक्ष, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कक्ष, मणिलाल डॉक्टर कक्ष इत्यादि। प्रदर्शनी स्थल को रायकृष्ण दास नाम दिया गया था। प्रदर्शनी स्थल के एक कोने में लोकार्पण मंच बनाया गया था, जहाँ भारतीय एवं मॉरीशस के लेखक अपनी पुस्तकों का लोकार्पण कर रहे थे। लोग आपस में मिल–जुल रहे थे। परिचय का आदान–प्रदान आपसी बातचीत एवं विजिटिंग कार्डों द्वारा हो रहा था। यह जहाँ अत्यन्त सुखद दृश्य था, वहाँ भोजन के विशाल पंडाल कक्ष में अत्यन्त दु:खद दृश्य भी देखने को मिला।

हमारे देश में अन्न को ब्रह्म माना गया है। भोजन का अर्थ केवल पेट भर लेना नहीं है। हमारे यहाँ अनाज को सम्मान देने की सीख दी जाती है, परन्तु हमारे देश से मॉरीशस गये कुछ प्रतिभागी भोजन पर भुक्खड़ों की तरह टूट पड़े। इतना ही होता तो गनीमत थी, परन्तु अनेक लोगों ने भर प्लेट भोजन लेकर आधा खाया, आधा छोड़ा। भोजन बरबाद करनेवाले अनपढ़ नहीं थे, परन्तु भोजन के प्रति वे अत्यन्त असंवेदनशील थे। मॉरीशस में भोजन बरबाद करनेवालों को हिकारत की नजरों से देखा जाता है, यह भोजन परोसनेवालों की आँखों से साफ झलक रहा था।

19 अगस्त अत्यन्त उल्लेखनीय दिन था। उस दिन मुख्य सभागार एवं समानांतर कक्षों में अनेक विषयों पर सार्थक चर्चा हुई। मुख्य सभागार में फिल्मों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के संरक्षण पर चर्चा हुई। बीज भाषण देते हुए डॉ. शशि दुक्खन ने कहा–''हिन्दी फिल्मों में समाज के सरोकारों को दिखाया है, राष्ट्रीय अखंडता, भावनात्मक एकता का प्रचार किया है और हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता दिलवायी है।'' सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध फिल्मकार और सेंसरबोर्ड के अध्यक्ष श्रीप्रसून जोशी ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा–''सिनेमा अपना विचार संस्कृति से लेता है, लेकिन क्या संस्कृति के दायित्व को सिनेमा पूर्ण रूप से निभाता है?यह उलझन भरा प्रश्न है। फिल्म चूँकि इंडस्ट्री है इसलिए उसके साथ कई चीजें जुड़ी होती हैं। इसलिए पूर्ण रूप से यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि फिल्में संस्कृति को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करती हैं।''

उस दिन समानांतर सत्रों में अत्यन्त महत्वपूर्ण विमर्श हुए, जैसे–सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' कक्ष में श्री सत्यदेव टेंगर की अध्यक्षता में 'संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति' विषय पर, भानुमति नागदान कक्ष में डॉ. कमल किशोर गोयनका की अध्यक्षता में 'प्रवासी संसार : भाषा और संस्कृति' विषय बीज वक्तव्य देते हुए श्रीप्रेम जनमेजय ने कहा–''प्रवासी देशों में भाषा और संस्कृति पहचान का सबसे सशक्त माध्यम है।' मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री श्रीअनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा–''मॉरीशस की जीवन संस्कृति में रची–बसी भोजपुर बोली, पूजापाठ और फिल्मों के माध्यम से हिन्दी भाषा आगे बढ़ी है। हिन्दी में हस्ताक्षर कर सकने के कारण मॉरीशस के नागरिकों को वोट का अधिकार मिल सका। इसी के बल पर कुली–संतानों का प्रधानमंत्री बनने तक का सफर पूरा हुआ है।''

इनके अलावा गोपाल दास 'नीरज' कक्ष में 'हिन्दी बाल साहित्य और भारतीय संस्कृति' विषय पर बीज भाषण देते हुए डॉ. दिविक रमेश ने कहा–''आज का बाल साहित्य बालक को मित्र समझता है और समझ को साझा करता है।''

एक कक्ष में चयनित आलेखों के सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. सुशील कुमार शर्मा ने अपने चुंबकीय आकर्षण में आबद्ध किया है। हिन्दी को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करने में विश्व हिन्दी सम्मेलनों की महती भूमिका रही है।'' इसी सत्र में मुझे अपने आलेख 'विश्व भाषा बनती हिन्दी' के वाचन का अवसर मिला।

भोजनोपरांत मुख्य सभागार में श्री एम.जे. अकबर, माननीय विदेश राज्य मंत्री, भारत सरकार की अध्यक्षता में 'प्रौद्योगिकी का भविष्य' विषय पर एक महत्वपूर्ण विचार गोष्ठी थी, परन्तु उसी समय प्रतिभागियों, अतिथियों के लिए ऐच्छिक रूप से पर्यटन स्थलों के भ्रमण का कार्यक्रम भी रख दिया गया था।

हमारे होटल में भारत के एक अति प्रसिद्ध शहर से आये हुए मि. एक्स भी ठहरे हुए थे। वे एक केंद्रीय संस्थापन में हिन्दी अधिकारी हैं। विश्व हिन्दी के सभी सम्मेलनों में सरकारी प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होते हैं। हँसोड़ हैं और रसिक भी। हास्य की कविताएँ एवं प्रसंग उनके मुख से झड़ते रहते हैं। हमारे होटल में फीजी से आयीं कुछ महिला प्रतिभागी भी ठहरी हुई थीं। मि. एक्स उनसे काफी रुचि लेते थे। अपने हँसोड़ स्वभाव के कारण वे हमारे होटलग्रूप के स्वयंभू लीडर बन गये थे।

पर्यटन स्थलों के भ्रमण के लिए बसों एवं वैनों की व्यवस्था आयोजकों की ओर से की गयी थी। मॉरीशस में बसों, वैनों, टैक्सियों में सीटों की निर्धारित संख्या के अतिरिक्त एक भी यात्री को लेने की अनुमति नहीं है। हमारे देश के कुछ राज्यों में बसें समय पर नहीं, यात्रियों से ठसाठस भर जाने पर खुलती हैं। कुछ राज्यों में बसों की छत पर बंदरों की तरह बैठे एवं गेटों पर चमगादड़ों की तरह लटके यात्री अनायास दिख जाते हैं। न दिखने पर आँखें व्याकुल होने लगती हैं।

भ्रमण हेतु बसें कतार में आ रही थीं और लोग उसपर सवार होते जा रहे थे। एक भी अतिरिक्त व्यक्ति होने पर उसे उतार दिया जाता था। हम चार–पाँच लोग एक बस में सवार हुए ही थे कि हमारे स्वयंभू ग्रूप लीडर ने बाहर से कहा–''पीछेवाली लग्जरी वैन में हमारे होटल के अन्य लोग हैं। उसी में आप लोग भी आ जाइए। हमलोग एक साथ रहेंगे, तो अच्छा रहेगा।''

हमलोग उतरकर उस वैन में बैठ गये। हमारे स्वयंभू लीडर भी बैठ गये। उस वैन में कुछ अन्य लोग भी आ गये। पूरी सीट भर जाने पर वैन आगे बढ़ी। थोड़ी दूर पर रास्ते के किनारे एक पेड़ के नीचे पाँच–छ: फीजी महिलाएँ खड़ी थीं। उन्हें भी भ्रमण हेतु जाना था, परन्तु वैन में एक भी सीट खाली नहीं था। हमारे ग्रूप लीडर ने अपना ग्रूप छोड़ दिया और हमें टा–टा बाय–बाय करते हुए वैन से उतर गये और फीजी महिलाओं के ग्रूप में शामिल हो गये। मेरे पास बैठे एक सज्जन ने कमेंट किया, ''देखा, कितने बेवफा निकले।'' मुझे तत्काल वसीम बरेलवी का एक शेर याद आ गया–

सारी दुनिया की नजर में है मिरा अहद–ए–वफा
इक तिरे कहने से क्या मैं बेवफा हो जाऊँगा?

शेर सुनकर वे हँसने लगे। दूसरे दिन मि.एक्स ने हमें सहर्ष बताया कि फीजी की एक संस्था की ओर से उन्हें बाकायदा हास्यकवि के रूप में आमंत्रण मिल गया है।

उस दिन सबसे पहले हमलोग अप्रवासी घाट गये। पिछले बार म्यूजियम नहीं देख पाया था, अतः सबसे पहले उसे देखा। म्यूजियम में रखी प्रत्येक वस्तुएँ, तस्वीरें, मूर्तियाँ आदि मुझे रोमांचित कर रही थीं। मुझे लग रहा था कि मैं गिरमिटिया मजदूरों की अतीत का चलचित्र देख रहा हूँ। उनके बर्तन–बासन, कपड़े, औजार, घर, वह जहाजनुमा बड़ी नाव का मॉडल, जिसमें वे पशुओं की तरह लादकर लाये गये थे, इत्यादि। उन्हें लालच दिया गया था कि मॉरीशस की जमीन के अंदर सोना है, जिसका एक भाग उन्हें भी मिलेगा। उन्होंने शीघ्र उनके झूठ को समझ लिया, परन्तु अपने कठोर परिश्रम से वहाँ की मिट्टी को ही सोना बना दिया।

उस दिन हमलोग और कई जगह गये, जैसे महात्मा गाँधी संस्थान, रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान, विश्व हिन्दी सचिवालय और हिन्दी प्रचारिणी सभा। महात्मा गाँधी संस्थान का निर्माण भारत एवं मॉरीशस सरकार के सहयोग से हुआ है। इसका उद्घाटन 9 अक्टूबर, 1976 को दोनों देशों के प्रधानमंत्री के हाथों हुआ। इस संस्थान का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त एक ऐसे उच्च शिक्षण केन्द्र को स्थापित करना है, जहाँ शिक्षा, शोध, कला एवं संस्कृति में उत्कृष्ट सेवा प्रदान की जाए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान के भवन का शिलान्यास दिसंबर 2002 में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीअटलबिहारी वाजपेयी के करकमलों से हुआ था। इसका उद्देश्य टैगोर के दर्शन के आधार पर रंगमंच, जनसंचार कलाओं, लोक कलाओं और शिल्प का आधुनिक शिक्षण प्रदान करना, मॉरीशस की समृद्ध, विविधतापूर्ण सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना और सृजनात्मक को बढ़ावा देना तथा डायस्पोरा एवं पारदेशी समुदाय पर एक शोध केन्द्र स्थापित करना है।

विश्व हिन्दी सचिवालय के मुख्यालय का उद्घाटन 13 मार्च, 2018 को मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय श्रीप्रवीण कुमार जगन्नाथ की उपस्थिति में भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्रीरामनाथ कोविंद के करकमलों से हुआ। सचिवालय के महासचिव प्रो. विनोद कुमार मिश्र के अनुसार 'विश्व हिन्दी सचिवालय अधिनियम 2002 के अनुसार इसका उद्देश्य हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रोन्नत करना, संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए एक सशक्त मंच प्रदान करना तथा अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी का संवर्धन एवं विकास करना रहा है।''

इस सचिवालय के निर्माण में जहाँ मॉरीशस सरकार ने जमीन दी, वहीं भारत सरकार ने भव्य भवन के निर्माण में संपूर्ण व्यय का वहन किया। इसका पुस्तकालय अत्यंत समृद्ध है तथा सचिवालय की ओर से नियमित 'विश्व हिन्दी पत्रिका' एवं 'विश्व हिन्दी समाचार' का प्रकाशन होता है।

'हिन्दी प्रचारिणी सभा' का भवन जितना सादगी भरा है, उसका इतिहास और उद्देश्य उससे भी अधिक महान है। इसके पत्रक के अनुसार–''हिन्दी प्रचारिणी सभा एक स्वैच्छिक व शैक्षणिक संस्था है। इसकी स्थापना तिलक विद्यालय नाम से 1926 में हुई और 1935 में 'हिन्दी प्रचारिण सभा' के नाम से पंजीकृत हुई। इस सभा का आदर्श वाक्य है–'भाषा गयी तो संस्कृति गयी।' इसी उद्देश्य को लेकर सभा आज तक कार्यरत है। कई समितियाँ आयीं और गयीं, पर सबका उद्देश्य एक ही रहा, वह है–हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार। सभा द्वारा शिक्षण व परीक्षण का कार्य वर्षभर चलता रहता है।''

इस संस्था द्वारा अनेक पत्र–पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। 'पंकज' नामक एक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन गत बत्तीस वर्षों से हो रहा है। श्रीसुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' के संपादन में 'दुर्गा' नामक हस्तलिखित पत्रिका इस सभा की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

उस रात माननीया श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन, शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री मॉरीशस के आतिथ्य में भव्य रात्रि भोज दिया गया। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा माननीय श्रीअटल बिहारी वाजपेयी की याद में काव्यांजलि का आयोजन मुख्य सभागार में हुआ, जो देर रात तक चला।

20 अगस्त 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन का दिन था। आमतौर पर समापन समारोह अत्यन्त औपचारिक होता है, लेकिन उस दिन अत्यन्त गण्यमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति एवं उनके उत्साहवर्द्धक संबोधन से धन्यवाद ज्ञापन तक मुख्य सभागार का खचाखच भरा रहना इस बात का प्रमाण था कि श्रोता विशिष्टजनों को अंत तक सुनना चाहते थे।

प्रतिवेदन सत्र की अध्यक्षता करते हुए पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्रीकेशरीनाथ त्रिपाठी ने कहा कि ''हिन्दी विश्व व्यापार की भाषा बन रही है, तकनीक की भाषा बन रही है, ज्ञान की भाषा बन रही है और हिन्दी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।''

विशिष्ट अतिथि माननीय श्रीअनिरुद्ध जगन्नाथ, रक्षा मंत्री मॉरीशस, मुख्य अतिथि महामहिम श्रीपरमसिवम पिल्लै वैयापुरी, कार्यवाहक राष्ट्रपति, मॉरीशस विशिष्ट अतिथि माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज, विदेश मंत्री भारत, विशिष्ट अतिथि माननीया श्रीमती लीला देवी दुकन–लछुमन, शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री, मॉरीशस के संबोधन के पश्चात् मॉरीशस एवं भारत का राष्ट्रगान हुआ। उसके बाद इंदिरा गाँधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजन हुआ। तत्पश्चात् वैश्विक स्तर पर हिन्दी के प्रचार के लिए उत्कृष्ट योगदान हेतु भारत, मॉरीशस एवं अन्य देशों के साहित्यकारों एवं संस्थाओं को 'विश्व हिन्दी सम्मान' प्रदान किया गया। मॉरीशस के प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के योगदान के लिए 'सर्वश्रेष्ठ हिन्दी शिक्षक सम्मान' प्रदान किया गया। इनके अलावा 11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का लोगो बनानेवाले व्यक्ति को भी सम्मानित किया गया। भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री माननीय श्रीएम.जे. अकबर ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

हिन्दी को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करना विश्व हिन्दी सम्मेलन की संकल्पना रही है। इस संकल्पना एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के साथ पूरे विश्व से आये लगभग 2000 अतिथियों एवं मॉरीशस की युवा पीढ़ी के अंतर्मन में हिन्दी भाषा के प्रति प्यार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि का संचार कर 11वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

दोपहर के भोजन का वक्त था। भारत से आयी एक प्रभावशाली महिला किसी के इंतजार में खड़ी थी। मेरे साथ ठहरे मिश्र बंधुओं ने उन्हें नमस्कार कर अपना परिचय दिया, फिर अपना परिचय पत्र भी दिया। दोनों अपने–अपने विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। दोनों की आकांक्षा पवित्र एवं तरल थी, पर वह महिला उतनी सरल नहीं थी। उन्होंने शायद उन लोगों का उद्देश्य समझ लिया था। नहले पर दहला फेंकती हुई वे बोलीं–'अच्छा, आपलोग बंगाल से हैं। एकबार मुझे बुलाइए न। कालीघाट और दक्षिणेश्वर देखने की बड़ी इच्छा है।'

वे भौचक्के रह गये। शायद नारी की इस शक्ति से वे परिचित नहीं थे। पर मैं बिल्कुल चकित नहीं हुआ। कारण एक दिन मुझे एक नारी ने अपनी शक्ति का परिचय दे दिया था। 19 तारीख के प्रसून जोशी जब मुख्य सभागार से बाहर निकले, तो उनके साथ फोटो खिंचवाने के लिए लोगों की होड़ लग गयी। मैं प्रसून जी के बगल में खड़ा हो गया और एक सज्जन को अपना मोबाइल फोन देकर फोटो खींचने का आग्रह किया। अभी वे फोटो

खींच पाते कि एक महिला मुझे परे धकेलकर बीच में घुस गयी।

21 तारीख को हमारी वापसी थी। स्वदेश जाने की खुशी तो थी, पर इतने दिनों के संग के बिछुड़न का गम भी कम न था। मॉरीशस है तो छोटा–सा देश, परन्तु छह दिनों तक रहने के बावजूद उसे पूरा देख नहीं सका, विशेषकर वहाँ के गाँवों को, जहाँ अप्रवासी भारतीयों ने अपनी भाषा और संस्कृति के पौधे को अपने खून–पसीने से पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित किया है। वैसे तो शहरों में भी जहाँ हिन्दुओं के घर दिखे, उनके मुख्य द्वार पर तुलसी मंच, श्रीगणेश एवं बजरंगवली की मूर्ति अवश्य दिखी। हमारी गाइड कमला कुंजल ने बताया कि मॉरीशस में हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने में 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा' और 'कबीर बीजक' का बहुत बड़ा योगदान है।

मॉरीशसवासियों में अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति अटूट प्यार है। इसके लिए वे अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञ भी हैं। डॉ. महिपाल के अनुसार–''मॉरीशसवासियों का हिन्दी प्रेम किसी से छिपा नहीं है। आरंभ से ही धार्मिक रचनाओं के साथ–साथ हिन्दी–साहित्य और संस्कृति के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि रही है। विभिन्न संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से उन्होंने हिन्दी की ज्योति का निरंतर प्रज्वलित रखा और आज भी वह निरंतर जल रही है।

विद्यार्थी जीवन में 'हिन्द महासागर में छोटा–सा हिन्दुस्तान' देखने का जो सपना मैंने देखा था, वह तो पूरा हुआ, परंतु पूरा न देख पाने की कसक मन में रह गयी। सपरिवार मॉरीशस आने और स्वर्ग–जैसे इस देश को पूरा देखने की मनोकामना के साथ मैंने विमान में बैठकर मॉरीशस की भूमि को प्रणाम किया और स्वदेश के लिए प्रस्थान किया।

लघु कथा

ट्रेन में नशा

केदारनाथ 'सविता'
पुलिस चौकी, मीरजापुर (उ.प्र.)
मो. 9935665068

रवि कानपुर अपनी साली की शादी में गया था। शादी बहुत धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई। दूसरे दिन वह कानपुर से अपने घर प्रयागराज वापस आने के लिए दोपहर में कानपुर सेंट्रल रेलवे स्टेशन पहुँचा। कालका–हावड़ा सुपर फास्ट ट्रेन में वह जनरल टिकट लेकर स्लीपर द्वितीय श्रेणी की बोगी में चढ़ गया।

उस बोगी में नीचे के कई बर्थ खाली थे। उसी में वह एक बर्थ पर बैठ गया। दिन का समय था। तीन घंटे की यात्रा थी। उसने देखा कि एक व्यक्ति गेट के पास वाले बर्थ पर 5–6 अटैची रखकर बैठा था। वह मोबाईल से किसी से कुछ बात कर रहा था।

रवि ने पूछा–'आप यहीं उतरेंगे क्या?'

उसने 'हाँ' में जवाब दिया।

थोड़ी देर में दो व्यक्ति उसे रिसीव करने आये और उसकी दो–दो अटैची लेकर उसे लिवाकर चले गये।

ट्रेन चल दी। रवि ने देखा कि एक झोला वहीं नीचेवाले बर्थ पर टिकाकर रखा था। ऊपर के आमने–सामने के दो बर्थ पर दो यात्री सोये थे। रवि ने उन्हें जगाकर पूछना चाहा कि वह झोला उनका हो तो उसे अपने पास ऊपर बर्थ पर रख लें, नहीं तो चोरी हो सकता है। पर वे दोनों गहरी नींद में थे। नहीं उठे, बेहोशी की हालत में थे।

बोगी में यात्रियों की संख्या बहुत कम थी। रवि डर गया कि इस झोले में कोई विस्फोटक या आपत्तिजनक सामग्री होगी तो वह फँस जाएगा। पुलिस उस झोले को उसी का सामान बताकर उसे गिरफ्तार कर लेगी।

उसने देखा कि ऊपर के बर्थ पर सोये दोनों व्यक्तियों के पास कोई सामान–अटैची, बैग आदि नहीं था। रवि को समझने देर नहीं लगी कि वे दोनों यात्री जहरखुरानों के शिकार हो गये हैं। ट्रेन पूरी रफ्तार से दौड़ रही थी।

तभी ट्रेन में गश्त करते पुलिस के दो जवान आते दिखाई दिये। रवि ने उन्हें रोककर उस झोले व उन दोनों लेटे यात्रियों के बारे में बताया। पुलिस ने उस झोले का सारा सामान बाहर निकालकर देखा। उसमें केवल मुझे–तुड़े लिपटे हुए पुराने अखबार भरे पड़े थे। फिर पुलिस ने बर्थ पर सो रहे उन दोनों यात्रियों को खींचकर नीचे उतारा। वे दोनों अर्धचेतनावस्था में थे। पूछने पर कुछ बोल नहीं पा रहे थे। दोनों पुलिसवाले बोगी में लेट्रिन के पास ले गये। उनकी सहायता करने के बजाय उन्हें डाँटने लगे–'ट्रेन में नशा करके चलते हो? जेब में कितना रुपया रखे हो, निकालो।

नींद में ही दोनों कुछ लड़खड़ाती जबान से बोल रहे थे, पर समझ में नहीं आ रहा था। स्पष्ट था कि उन्हें खाने–पीने की किसी चीज में नशीला पदार्थ मिलाकर दे दिया गया था और उनका सामान अटैची आदि कानपुर में वह यात्री लेकर उतर गया था। सामान तो चला ही गया था, जेब में बचा–खुचा रुपया भी पुलिसवालों ने लेकर उन्हें डाँटकर कहा–'जाकर सो जाओ। आइन्दा से नशा करके ट्रेन में मत चलना।'

फिर डंडा हिलाते हुए दोनों सिपाही दूसरी बोगी में चले गये।

आधुनिकता

डॉ. अनुज प्रभात
फारबिसगंज, अररिया
(7979966155)

वह जा रही थी। उसके कंधे पर लटका एक लाल रंग का बैग था। उस बैग पर सफेद रंग से मोटे–मोटे अक्षरों में लिखा था–'ष्टउ बवसकण ष्टउ ीवजण ष्ट उ मअमतल जीपदहण्ण्ण्ण' चौराहे पर कुछ लड़के खड़े थे। उन लोगों ने उस लड़की को जाते हुए देखा। तभी उनकी नजर उस बैग पर लिखे शब्दों की ओर गयी। उन्होंने एक दूसरे की आँखों में देखा। वह आगे बढ़ी और उसके पीछे–पीछे चलते हुए एक ने कहा–'कोल्ड को गर्मी की आवश्यकता होती है, बोलो तो गर्म कर दूँ?' दूसरे ने कहा–'हॉट को कोल्ड करना मुझे आता है, कर दूँ?' और तीनों ने एक साथ कहा–'तुम एवरीथिंग हो, हमें एवरीथिंग की आवश्यकता है क्या? लड़की की नजरें नीची थीं। चलते–चलते उसने अपने बैग के सामनेवाले हिस्से को पलट दिया। लड़के वापस लौट गये। उनका मकसद पूरा हो चुका था।

आत्मकथ्य

मेरा बचपन

भगवती प्रसाद द्विवेदी
पोस्ट बॉक्स 115, पटना
(बिहार) मो.–9430600958

अपने बारे में कुछ लिखना तलवार की धार पर चलने जैसा ही जोखिम भरा होता है। वैसे अपनी रचनाओं के माध्यम से किसी न किसी रूप में खुद को ही तो अभिव्यक्त करता रहा हूँ

मेरा जन्म बलिया जनपद (उ.प्र.) के पूर्वांचल के एक पिछड़े गाँव दलछपरा में पहली जुलाई, 1955 को हुआ था। बाद में मैंने गौर किया कि वहाँ स्कूल के अभिलेख में हर विद्यार्थी की जन्मतिथि पहली जुलाई ही अंकित थी; क्योंकि हर वर्ष पहली जुलाई को ही नये सत्र की शुरुआत होती थी। बाद में जब मैंने अपनी जन्मकुंडली देखी तो उसमें मेरी जन्मतिथि 26 सितम्बर, 1955 अंकित थी।

होश संभालने पर पता चला कि मेरी डेढ़ वर्ष की उम्र में ही माँ दिवंगता हो चुकी थीं। दादी बताया करती थीं कि मेरे जन्म के पूर्व ही एक जटाजूटधारी साधु ने अचानक प्रकट होकर मेरे जन्म, माँ के निधन और मेरे नामकरण के साथ ही तेजस्वी होने की भविष्यवाणी कर दी थी। खैर, आखिरी भविष्यवाणी तो सच साबित नहीं हुई, मगर माँ की ममता से मैं जरूर वंचित हो गया। पिताजी के दूसरी शादी न रचाने के निर्णय से सौतेली माँ के प्यार–दुत्कार से भी मैं वंचित ही रहा। परिवार का मैं इकलौता पुत्र होने की वजह से दादी, बड़ी माँ, बड़े पिताजी—सबकी आँखों का तारा था मैं और सबका भरपूर स्नेह–दुलार मुझे मिला। मगर वहाँ की रूढ़ियों, अंधविश्वास का भी आए दिन शिकार होता रहा। तभी तो बचपन में कई भयंकर बीमारियों, भूत–प्रेतों और ओझा– सोखाओं की चपेट में आकर जिंदगी और मौत से किशोरावस्था तक जूझता रहा। परिवार के लोग सदा सशंकित रहते कि पता नहीं, कब तूफान का कोई झोंका आकर एक ही झटके में खानदान के दीप को बुझा दे! मगर मैं ऐसा अड़ियल कि बुझते–बुझते अचानक जल उठता था। दादी मुझे एक पल भी अकेला नहीं छोड़ती और अपने बगल में ही सुलाकर लोककथाएँ, कहानियाँ और भजन आदि सुनाया करती थीं। कभी मैं कहानी के पात्रों के साथ बहते हुए फफक–फफककर रो पड़ता तो कभी तरह–तरह की कल्पनाओं में खो जाया करता था। अंतर्मुखी और भावुक तो था ही। शायद दादी की उन कथाओं से ही मेरे मन में कल्पनाशीलता और साहित्य–लेखन का बीजारोपण हुआ हो।

दीदी कृष्णा से सर्वप्रथम मुझे अक्षर–ज्ञान मिला था। उन्हें स्कूल जाते हुए देखकर मैं भी मचल उठता था। फलतः बहुत कम उम्र में ही गाँव के प्राइमरी स्कूल में जाने लगा था। रात में लालटेन या ढिबरी की रोशनी में दीदी बोल–बोलकर पाठ याद करतीं और मुझे लेटे–लेटे ही उनके सबक कंठस्थ हो जाया करते थे। इसका लाभ यह हुआ कि जब मैंने छात्रवृत्ति की परीक्षा दी, तो उन सवालों को हल करने में सफल रहा और एक बार वजीफा मिलने का सिलसिला शुरू हुआ तो अंत तक मिलता ही रहा। हाई स्कूल में विशेष योग्यता के साथ मैंने परीक्षा उत्तीर्ण की और मेरिट लिस्ट में मेरा नाम दर्ज हुआ। फिर तो राष्ट्रीय छात्रवृत्ति एम.एससी. (रसायन विज्ञान) की स्नाकोत्तर उपाधि मिलने तक मिलती ही रही। दीदी ऊँची कक्षा की कविताएँ रटतीं और वे कविताएँ मुझे लेटे–लेटे ही कंठस्थ हो जातीं।

गाँव के प्राइमरी स्कूल में नंगे पाँव जाते हुए पढ़ाई और मॉनिटरी करता रहा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अगुआ बनता रहा और वहाँ के प्रधानाध्यापक स्व. रामप्रसादजी पांडेय से जीवनभर काम आनेवाली आधारभूत शिक्षा ग्रहण करता रहा। उन्होंने मेरे पिताजी को भी पढ़ाया था और मुझे भी। उस स्कूल को ही उन्होंने आजीवन सेवाएँ दी थीं और उनके समर्पित अध्यापन–मेहनत का ही नतीजा था कि हर साल स्कूल का एक मेधावी छात्रा वजीफा पाने में अवश्य कामयाब होता था। सुबह की प्रार्थना–सभा में मैं एक सहपाठी मित्र के साथ 'हे प्रभो! आनंददाता' और 'वह शक्ति हमें दो दयानिधे!' का गायन आगे–आगे करता तथा पीछे– पीछे सभी छात्र दोहराया करते थे। स्थूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की वार्षिक प्रतियोगिताओं में मैंने ब्लॉक स्तर पर, जिला स्तर पर और कमिश्नरी स्तर पर भाग लेकर शिल्ड एवं बहुत सारे पुरस्कार जीते थे।

गाँव में तब नवयुवक मंगल दाल का गठन गाँव तथा खेल खलिहानों की सुरक्षा के लिए हुआ था। उसका पुस्तकालय मेरे बाबूजी के देखरेख में मकान की एक कोठरी में चलता था। मैं रोज एक पुस्तक लेता और दिनभर में पढ़ डालता था। फिर तो सारे दोस्त 'पढ़ाकू' कहकर बुलाने लगे थे।

पाँचवीं के बाद गाँव से एक कोस की दूरी तय करके रेवती मिड्ल स्कूल में जाने लगा। वहाँ के हेडमास्टर भी पिताजी को पढ़ा चुके थे। पिताजी पहले अध्यापन में, फिर बीजगोदाम की नौकरी में, तत्पश्चात् आयुर्वेदिक वैद्यगिरी में और अंततः खेती–गृहस्थी में आ भिड़े थे। बड़े पिताजी की भी कंपनी बंद हो जाने पर गाँव आ गये थे और परिवार की रोजी–रोटी की समस्या मुँह बाए खड़ी हो गयी थी। तब अच्छी खासी खेती बारी के बावजूद संघर्षशीलता का दौर शुरू हो चुका था।

लिखने की विधिवत् शुरुआत मिड्ल स्कूल से ही हुई थी। वहाँ हर शनिवार को बालसभा हुआ करती थी, जिसमें हर छात्र को कुछ–न–कुछ सुनाना होता था। कोई चुटकुला सुनाता, तो कोई पाठ्य पुस्तक से कविता। मैंने पहली कहानी लिखी। सुनाने पर साथियों ने खूब तालियाँ बजायीं। आमतौर पर कविता से लेखन की शुरुआत हुआ करती है, मगर मेरा लेखन कहानी से आरंभ हुआ और बाद में कविता लिखना शुरू किया। फिर तो सिर पर पढ़ने और लिखने की जो धुन सवार हुई, उसने नशा का रूप धारण कर लिया। वहाँ अंग्रेजी के अध्यापक पं. जगन्नाथ पांडेय और संस्कृत के शिक्षक आचार्य शुकदेव मिश्र ने काफी प्रोत्साहित किया। उन्हीं दिनों बाल कहानियों की एक पांडुलिपि बना ली थी–'चित्ताकर्षक कहानियाँ' शीर्षक से। एक कहानी भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की पत्रिका 'बालभारती' को भेज दी थी। यह कहानी न सिर्फ 'बालभारती' में 'वरदान' शीर्षक से प्रकाशित हुई, बल्कि मनीऑर्डर से पैंतीस रुपये का पारिश्रमिक भी प्राप्त हुआ। उस रोज मुझे सबसे ज्यादा खुशी हासिल हुई थी। फिर तो गाँववालों ने 'पढ़ाकू' की जगह मुझे 'कविजी' कहना शुरू कर दिया था। आगे चलकर प्रकाशन विभाग ने जब 'बालभारती की प्रतिनिधि कहानियाँ' संकलन प्रकाशित किया, तो मेरी वह कहानी संकलन की पहली कहानी बनी। फिर तो तेरी रचनाएँ धड़ाधड़ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं।

मेधावी होने का नुकसान यह हुआ कि मुझे न चाहते हुए भी विज्ञान संकाय में जाना पड़ा और लाभ यह हुआ कि अनावश्यक विस्तार के वजाय 'टु द प्वाइंट' में मेरी आस्था बढ़ी। इस तथ्य के पुख्ता प्रमाण हैं कि हिन्दी साहित्य के प्राध्यापकों ने हिन्दी का सर्वाधिक अहित किया है और साहित्येतर विषयों के पेशों से सम्बद्ध रचनाकारों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

यों तो मैं बचपन से ही अंतर्मुखी रहा है, पर यदा–कदा शरारतें भी कर दिया करता था। ऐसी ही एक शरारत मैंने दोस्त की किताब फाड़कर की

थी, मगर मेरी शरारत ने मित्र के जीवन की दिशा ही बदल दी थी। बाद में मेरी वह कहानी 'एक शरारत : एक नसीहत' शीर्षक से 'पराग' में प्रकाशित हुई थी।

बात उन दिनों की है, जब मैं सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था। मुझमें एक बुरी आदत यह थी कि मैं किताबें कभी भूलकर भी स्कूल नहीं ले जाता था। मेरा दोस्त अमर मेरे बगल में ही बैठता था। मैं उससे पुस्तक झपटकर पढ़ने लगता और वह अपनी कॉपी पर झूठ–मूठ की लकीरें खींचने, कुछ अंट–शंट लिखने, किसी को गुदगुदाने या ठोकर मारने की शरारतों में मशगूल हो जाता था। बदले में मैं उसे गणित के सवाल नकल करा दिया करता था।

मगर एक दिन उसने अपनी किताब देने से साफ मना कर दिया था। मैंने आव देखा न ताव, पलक झपकते ही 'इंग्लिश रीडर' नामक उस किताब के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। अंग्रेजी सर से शिकायत करने पर मैंने सफाई पेश की थी–'सर! यह मुझे आपसे पिटवाने की चुनौती दे रहा था। मैंने समझाया कि जब मैं कोई गलती करूँगा ही नहीं, फिर सर मुझे पीटेंगे क्यों?' इसपर इसने खुद अपनी किताब फाड़ डाली और मुझे पिटवाने के लिए शिकायत लेकर आपके पास आ पहुँचा।

'अच्छा, तो यह बात है!' कहकर टीचरजी उसे ही अंधाधुंध पीटने लगे थे। फिर कक्षा से बाहर निकाल दिया था। शाम को उसे घर जाकर जब मैंने अपनी गलती के लिए माफी माँगने लगा, तो उसने कहा था–'नहीं, द्विवेदी! तुम्हारी कोई गलती नहीं, यह मेरी शरारत का नतीजा है। तुम्हारी अच्छी छवि के कारण मेरी सच्ची बात झूठी साबित हुई और तुम्हारी मनगढंत बात सच्ची। दिनभर मैं इसी विषय पर सोचता रहा। मुझे तो इस घटना से शिक्षा मिली है। अब मैं भी बुरे कामों में बिल्कुल दिलचस्पी नहीं लूँगा।'

सचमुच उस दिन के बाद अमर के जीवन की दिशा बदल गयी थी। उस वर्ष की भाषण–प्रतियोगिता में मुझे प्रथम और अमर को द्वितीय स्थान हासिल हुआ था। आगे चलकर वह सिविल इंजीनियर बना था। बाद में वह जब भी मिलता, उस घटना का जिक्र जरूर किया करता था। मैं हर बार उससे यही कहा करता था–

''कदम चूम लेती है खुद आके मंजिल
मुसाफिर अगर अपनी हिम्मत न हारे।''

ग़ज़लें

डॉ. कमलेश द्विवेदी
दर्शन पुरवा, कानपुर (उ० प्र०)
मो०–9140282859

कहानी चल रही है

प्यार की मीठी कहानी चल रही है
और यह पुरवा सुहानी चल रही है

इश्क़ पैदा हो गया है दो दिलों में
दुश्मनी भी ख़ानदानी चल रही है

कोई तो प्यासा कहीं होगा यक़ीनन
एक बदली लेके पानी चल रही है

वो नहीं है आज इस दुनिया में लेकिन
उसने जो दी थी निशानी, चल रही है

रोज़ कहता ख़्वाब में–कल भी मिलूँगा
इस भरोसे ज़िंदगानी चल रही है

याद उसकी आ रही है, ''हीर–राँझा''
फिल्म टीवी पर पुरानी चल रही है

सब कुछ उसके दम से है

उसका रिश्ता हम से है
ख़ुशियों से है ग़म से है

कुछ तो सुंदर है ही वह
कुछ जुल्फों के ख़म से है

उसका रिश्ता पायल से
पर मेरा छम–छम से है

मुझको बस मतलब तुमसे
ना ज़्यादा ना कम से है

नाम प्रयाग भले ही हो
पर महिमा संगम से है

जीवन में संगीत सदा
साँसों की सरगम से है

मेरा जो भी है रुतबा
सब कुछ उसके दम से है।

लघुकथा

लॉकडाउन

चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री

हर बार लॉकडाउन खतम होने की तारीख पास आती तो मन में आशा सी बंध जाती कि रुके हुए काम पूरे हो सकेंगे। सबसे पहले वह ऐनक ठीक करवाएगी। इसके टूट जाने से सारा काम रुक गया था। सबसे छोटे पोते ने खेल–खेल में कब तोड़ दी पता ही नहीं चला। न जाने कब समय मिलेगा, उसे अपनी ऐनक ठीक करवाने का। इसी तरह वह सोचती रही और अचानक कर्फ्यू लग गया और अगले दिन लॉकडाउन शुरू हो गया। उसके पास बाई फोकल ऐनक भी थी, लेकिन उससे काम चलाना थोड़ा कठिन हो रहा था। अब जब लॉकडाउन को कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रखा तो उसने सोचा कि सबसे पहले वह अपनी ऐनक ठीक करवा ही ले। सोचा बेटा तो रात को घर आता है, बहू को ही कह दूँ। उसकी बहू नीता प्राध्यापिका है। विवाह के बाद बेटा अलग फर्स्ट फ्लोर पर रहता है। बच्चे स्कूल से आने के बाद या छुट्टी वाले दिन उसके पास ही रहते हैं।

कॉलेज से वापसी में नीता कई काम निपटा लेती है। फिर भी किसी जरूरी काम के लिए उसे मार्केट जाना ही पड़ता है, वैसे भी ऐनक की दुकान दूर नहीं थी।

शीला ने नीता से कहा कि जब उसके पास समय हो तो उसे मार्केट ले जाना। वह मान गई। चलो, एक काम तो हो गया आज। वह निश्चिन्त होकर लेट गयी। ऐसे में छत की ओर देखना कितना सुखद था।

अगले दिन जब वह कॉलेज से आयी, तो शीला ने उसे कहा–'आज चलें?'

नीता ने कहा–'अभी तो नहीं, शाम को चलेंगे।'

'ठीक है।'

चार बजे के लगभग वह आ गई। शीला तो तैयार ही बैठी थी। उसके दोनों पोते इतने बड़े भी नहीं थे कि घर में अकेले बैठ जाते। उसने बच्चों को भी साथ चलने के लिए कहा। बड़ा बैठ गया, पर छोटा पोता अभी बाहर ही खड़ा था।

'चलो, बैठो, जल्दी करो।' कहकर बड़े पोते अगम को भीतर बैठाया। अखिल को बिठाने के लिए जैसे ही पीछे मुड़ी तभी अगम ने कार का दरवाजा बंद कर दिया। उसका हाथ दरवाजे के ऊपर था, परिणाम एक अंगुली पर थोड़ी–सी चोट लगी थी। वह बहुत जोर से चिल्लाई...और वह भी। पर चोट तो लगी थी। शीला ने पूछा–'कहाँ लगी है?' तो उसने उसका हाथ झटक दिया और धक्के से छोटे पोते को घसीटकर कार में पटक दिया और अगम के बाल खींचकर उसकी छाती पर जोर से लात मारी।

शीला को ऐसा लगा, जैसे ये लात–घूँसे सब उसे ही पड़ रहे हैं। उसका अंतर्मन चीत्कार कर उठा, पर वह कुछ न कह सकी।

यह देखकर वह बहुत घबरा गयी, उसे समझ नहीं आया कि वह क्या करे। वह खड़ी रही, फिर 'चलो' सुनकर वह चुपचाप कार में बैठ गयी। अगर वह कुछ बोलती तो हो सकता था कि वह उसे कुछ भी सुना देती। कॉलोनी में और तमाशा बनता। वह असमंजस में ही थी। मन में आया कि मना कर दें। कैसे ले जाएगी? दर्द तो हो ही रहा होगा। लेकिन उसने झटके से गाड़ी चला दी। इतनी तेजी से गाड़ी चलाते देख उसे घबराहट होने लगी। लेकिन फिर भी वह कुछ नहीं बोली। उसने न जाने गाड़ी को कहाँ–कहाँ घुमा दिया। फिर वह ऐनक की दुकान पर पहुँची। शीला ने जल्दी से अपनी ऐनक ठीक करवाई और जब वापस गाड़ी में आकर बैठने लगी, तो देखा वह फोन पर किसी से बात कर रही थी, जरूर उसे बेटे अरुण से कर रही होगी, पर वह चुपचाप गाड़ी में आकर बैठ गयी। वापस आने में दस मिनट लगे। जबकि जाने में आधा घंटा लग गया था। घर आकर उसने चैन की साँस ली। तभी उसने देखा की कार बंद करके नीता उसके पीछे– पीछे भीतर आ गयी। फिर उसने देखा, बेटा भी पीछे–पीछे आ रहा है। बेटा कैसे इतनी जल्दी आ गया, नीता ने ही बुलाया होगा।

'एक बात कहनी है। आपकी बेटी को चोट लगी होती तो क्या आप उसे लेकर जाती?'

तुमने तो ऐसी हालत कर दी थी कि न वापस जाने योग्य थी, न बैठने योग्य। असमंजस में थी कि क्या करूँ?

'आपने तो मुझे कॉलेज से आते ही चलने के लिए कह दिया, जैसे मैं वहाँ डांस करके आई थी।'

यह बात, यह घटना उसके लिए किसी बड़े झटके से कम नहीं थी, वह यह सुनकर हतप्रभ रह गयी। आज उसे क्रोध आ गया। उसकी ऐसी कितनी ही हरकतों को सहन किया और कभी कुछ नहीं बोली थी।

'तुम तो मुझ पर पूरा अधिकार समझती हो, मैं चाहे ठीक हूँ या नहीं। इस उम्र में भी बच्चों का पूरा ध्यान रखती हूँ। कोई एहसान नहीं करती; क्योंकि ये मेरे अपने बच्चे हैं। फिर भी थक तो मैं भी जाती हूँ; क्योंकि निश्चित समय पर किसी काम को करने में कठिनाई होती है, लेकिन मैंने कभी कुछ नहीं कहा और तुम तो मुझे यहाँ तक लेकर गई हो, वह भी इसलिए कि मुझे कार चलानी नहीं आती और ऐनक बनवानी बहुत जरूरी थी। तुम्हें खुद कहना चाहिए था ठीक करवाने के लिए।

तभी बेटा बोला–'अच्छा, अब चुप हो जाओ।'

'हद हो गयी इस तरह तो कोई नौकर से भी बात नहीं करता। नीता! न तुम्हें उम्र का लिहाज है, न रिश्ते का। यह लॉक डाउन न होता तो मैं तुम्हें अपने आप ठीक करवा लेती, तुम्हें कहना ही न पड़ता।'

'बेटी की बात करती हो। पहली बात वह इस तरह का व्यवहार न करती, जिस तरह तुमने अपने बच्चों के साथ व मेरे साथ किया है। वह कह देती कि फिर कभी चलेंगे, लेकिन तुमने तो मुझे सोचने का अवसर ही नहीं दिया।'

'नीता! तुम जाओ।' बेटा बोला।

'अच्छा, जाता हूँ मैं भी।'

वाह बेटा! तुमसे एक बार भी नहीं कहा गया कि माँ के साथ कैसे बोल रही हो। एक तो उसका स्वभाव ऐसा, दूसरा लॉक डाउन। उसने मन ही मन सोचा, यह लॉकडाउन तो अब हुआ, पर रिश्तों का लॉकडाउन न जाने कबसे शुरू हो चुका था।

'जाते–जाते फिर बोल रही थी–'मैं जानती हूँ सब। आपको अपने काम की पड़ी रहती है।'

कहानी

इलायची की शादी में लौंग दीवाना

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव
भिलाई, दुर्ग
मो०–7252606036

वक्त का करिश्मा कितना विचित्र होता है, इसे आज तक कोई नहीं समझ सका है। गोपाल मिश्र बहुत सीधा सादा व्यक्ति है। उसने सदैव अपने जीवन में शांति और ईमानदारी को ही महत्व दिया है।

गोपाल मिश्र सरकारी ब्लाक ऑफिस में बी.डी.ओ. के पद पर काम करता है।

आज ऑफिस में बड़े बाबू रामशरण की अचानक हृदय घात से मृत्यु हो गयी। इसीलिए आज ऑफिस में छुट्टी हो गयी। समस्त कर्मचारी श्री रामशरण जी के अंतिम दर्शन करने और उनके जीवन की अंतिम यात्रा में शामिल हुए। श्मशान घाट में उनके अंतिम संस्कार के सभी काम में शामिल होकर लोग अपने अपने घर चले गये। गोपाल मिश्र जी ने यह महसूस किया कि जितने आदमी उतने ही बातें कर रहे थे। ए.ओ. साहब ने कहा, कुछ भी कहो रामशरण जी ने जिंदगी तो अच्छे से जिया पर गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारी का कोई भी कार्य कर पाए ? दो लड़कियाँ और एक लड़का है वह भी पूना में इंजीनियर बन कर नौकरी कर रहा है।

गोपाल मिश्र सोचते बहुत थे। उनकी एक लड़की पूनम और एक लड़का प्रकाश है। प्रकाश एम.बी.ए. करने हैदराबाद चला गया है। पूनम बिटिया छोटी है वह बी. कॉम. सेकेन्ड इयर में पढ़ती है। गोपाल मिश्र जी आज चार बजे ही घर पहुँच गए। मिश्र जी को देखते ही गोमती ने हँसकर कहा–आज जल्दी कैसे आ गए। रोज तो आठ बजे के पहले घर पहुँचते नहीं ? सुनों आज आफिस में बड़े बाबू की मृत्यु हो गई इसी से छुट्टी हो गई। अभी मैं भोजन नहीं करूँगा। सिर्फ चाय ही बना दो।

टिफिन भी वैसे ही भरा पड़ा है। मिश्र जी एक हाथ में मोबाईल पकड़े बारबार फोन लगा रहे थे। परंतु फोन नहीं लग रहा था। बार बार मिश्र जी घड़ी देख रहे थे। आखिर झल्लाकर गोमती से पूछ बैठते हैं पूनम कितने बजे कॉलेज से आती है। साढ़े छै बज गए है। कौन सा कॉलेज है जो अभी तक खुला रहता है।

आज आपको क्या हो गया है ?आपको बताकर ही तो कोचिंग क्लास में जाती है। आपने ही उसे फीस के लिए रूपये दिये। कैसे भूल गये हो ?

ठीक है जाओ एक कप और चाय बनाकर लाओ। दो बार तो चाय पी लिए हो ज्यादा चाय भी नुकसान करता है। अच्छा एक ग्लास पानी ले आओ।

तभी पूनम आ गयी। पूनम बाईक से उतरी और उसे छोंड़ने वाला लड़का बाय करके आगे बढ़ गया। मिश्र जी यह सब देख रहे थे।

पूनम ने हँसते हुए कहा पापा आज जल्दी कैसे आ गये। मिश्र जी ने जोर से कहा मेरा घर है मैं कभी भी आ सकता हूँ। तुम बताओ वह कौन लड़का था जो तुम्हें अभी छोड़कर गया।

पापा वह लड़का नहीं(हम लोगों का कोचिंग सर है उनका भी घर इसी तरफ है। जिस दिन उनका काम खत्म हो जाता है वे मुझे बाईक से ड्राप कर देते हैं यह कहकर पूनम अपने कमरे में चली गयी।

मिश्र जी आश्चर्य से अपनी बेटी को देखते रहे, कुछ भी नहीं बोल सके। आए दिन न्यूज पेपर पढ़कर मिश्र जी विशेष परेशान हो जाते है। क्या जमाना आ गया है किसको क्या कहे ? आज की युवा पीढ़ी अपने मन का ही करती है। कुछ मना करो तो दूसरे दिन फाँसी में लटके नजर आते हैं। किसको दोष दें ?

समझ में नहीं आ रहा है। क्या गाँव क्या शहर सभी जगह फाँसी में लटकने या जहर खाकर आत्महत्या करने की खबर पढ़कर जी दहल जाता है। उन्हें कौन समझाए कि मौत कोई समस्या का समाधान नहीं है। सिर्फ यही होता है माँ बाप परेशान हो जाते हैं दु:खी हो जाते हैं, समाज में बदनामी होती है वह अलग। कल रविवार है। पूनम को सामने बैठाकर, उससे बात करना जरूरी है।

यह सोचकर मिश्र जी ने दूसरे दिन चाय पीते समय पूनम से पूछ बैठे। बेटी तुमने अपने भविष्य के बारे में क्या सोंचा है ?

पूनम ने हँसते हुए कहा – पापा मेरी इच्छा है बी.कॉम के बाद एम. कॉम. और पी.एच.डी. करना चाहती हूँ। पापा आप मेरे लिए जुपीटर गाड़ी खरीद देते तो बहुत ही अच्छा हो जाता। मिश्र जी ने कहा – बेटी आजकल के वातावरण को देखकर मुझे डर लगता है कि कहीं कोई एक्सीडेंट न हो जाए। इसीलिए जुपीटर गाड़ी वगैरह मैं नहीं खरीदना चाहता ?

पापा आप चाहते हैं मैं 18 वीं 19 वीं सदी की लड़की बनूँ। घर के काम–काज और बच्चों को पालना यह मेरी जिंदगी नहीं हो सकती ?

मैं 21 वीं सदी की लड़की हूँ। मोबाईल कम्प्यूटर के माध्यम से पूरी दुनियाँ सिमट गई है। मैं कूप मण्डूक नहीं बनना चाहती। जो डर गया वह जिंदगी में कुछ नहीं कर सकता है।

अरे पूनम बिटिया तुम नाराज बहुत जल्दी हो जाती हो ?पूनम ने हँसते हुए कहा आप नाराज भी करते हो, उसके बाद कहते हो नाराज हो गई क्या ?

कुछ दिनों तक सब कुछ शांत चलता रहा। एक दिन मिश्र जी ने बहुत सोच समझ कर पूनम के लिए जुपीटर गाड़ी खरीद दी। पूनम गाड़ी को पाकर बहुत खुश हो गई।

गोपाल मिश्र और गोमती दोनो ने यह तय किया कि अपने समाज के किसी योग्य लड़के से पूनम की शादी की बात करें।

गोपाल मिश्र के मित्रों में एक चंद्रकांत शुक्ल जी है। उनका एक लड़का है। उसके बारे में समाज में विशेष चर्चा है। यह सोचकर गोमती और गोपाल मिश्र जी दोनों उनके घर गये थे। वहाँ चंद्रकांत गोपाल जी से मिलकर बहुत खुश हुए। उनका लड़का प्रांजल एम. टेक कर रहा है। उसका केम्पस सिलेक्शन भी हो चुका है। वह अब जल्द ही बैंगलोर जाएगा। वहाँ उसे किसी कम्पनी में नौकरी मिल जायेगी। गोपाल और गोमती बहुत खुश होकर वापस अपने घर आए।

पूनम का बी.कॉम. फायनल का रिजल्ट निकल गया। वह सेकेण्ड डिविजन पास हो गई।

मिश्र जी ने पूनम को बुलाकर कहा–बेटी तुम्हारी शादी करना चाहते हैं पूनम ने दु:खी मन से कहा पापा मैं अभी और पढ़ना चाहती हूँ। मेरी अगले महीने कोचिंग क्लास की परीक्षा होने वाली है। पापा आज के बदलते परिवेश में गृहस्थी की गाड़ी दोनों यदि सर्विस करते हैं तो अच्छे से चलती है। आजकल भौतिक चीजों का सुन्दर से सुन्दरतम अविष्कार हो रहा है। हर कोई उसका

उपयोग करना चाहता है। पूनम ने कहा पापा अपने जीवन साथी को बिना देखे उससे बात किए बिना विवाह नहीं करना चाहूँगी। हमें जिंदगी जीना है जब तक हम दोनों एक दूसरे की मानसिकता को नहीं समझेंगे तब तक शादी नहीं कर सकती हूँ।

गोपाल आश्चर्य से चुपचाप अपनी बेटी की बात को सुनते रहा ? कितना अधिक अपने जीवन के बारे में हमारी बेटी सोंचती है। मैं तो पिताजी ने जो कहा उनकी बातों को काटने की हिम्मत ही नहीं थी। उन्होंने जहाँ शादी करने को कहा वहीं चुपचाप शादी कर लिए। एक बार लड़की की तस्वीर देखने की इच्छा भी प्रकट नहीं किए।

पिताजी कि मृत्यु के बाद उनके ऑफिस में मुझे अनुकंपा नौकरी मिली। तो घर की आवश्यकताओं को देखते तुरंत ज्वाईन कर लिये । मेरे परिश्रम और काम को देखकर धीरे धीरे प्रमोशन भी हो गया और आज उसी आफिस में मैं बी.डी.ओ. बन गया।

प्रकाश भी हैदराबाद से एम.बी.ए. कर वापस आ गया।

एक दिन मिश्र जी ने पूनम बिटिया से कहा–बेटी अब हम तुम्हारा शादी कर देना चाहते है। पापा मुझे विश्वास है कि बैंक में नौकरी मिल जायेगी। मैं सर्विस करते हुए एम.कॉम. भी करूँगी।

मिश्र जी ने हँसते हुए कहा – बेटी इक्कीसवीं सदी की युवा पीढ़ी की यही सबसे बड़ी खराबी है कि तुम लोग कभी यह नहीं सोच सकते कि जनम, लग्न और मरण यह अपने हाथ की बात नहीं है। जिस दिन तुम्हारा संयोग होगा, उस दिन लाख मना करोगी शादी हो जायेगी। पापा आप लोग भाग्यवादी हैं पर हम लोग कर्मवादी हैं जैसे कार्य करेंगे उसका फल हमें वैसा ही मिलेगा। मैं अपने जीवन साथी का चुनाव अपनी इच्छानुसार ही करूँगी।

मिश्र जी यह सब सुनकर शांत हो गए। चंद्रकांत जी को मिश्र जी ने फोन कर दिया कि लड़की अभी और पढ़ना चाहती है। शादी नहीं करना चाहती। पूनम सर्विस करते हुए एम.कॉम. प्रीवियस पास हो गई। एक दिन पूनम एक लड़के को लेकर आई। पापा आप इन्हें पहचानते हैं मिश्र जी ने कहा कौन है ?मैं नहीं जानता।

पापा आप भूल रहे हो। आपने इन्हें कई बार देखा है। ठीक है देखा होगा। अभी क्या बात है ?

पूनम ने हँसते हुए कहा मुझे अपने बाईक से छोंड़ने यही आते थे। आजकल कॉलेज में प्रोफेसर हो गए हैं साथ ही कन्फर्म भी हो गए हैं मेरा भी बैंक की सर्विस पक्की हो गई है। हम दोनों विवाह करना चाहते है। इसलिए आपका आशीर्वाद चाहते हैं।

मिश्र जी ने गोमती के तरफ देख कर कहा तुम्हारी क्या राय है ?गोमती ने हँसते हुए कहा – इतने दिनों से दोनों एक दूसरे को चाहते थे, पर कोई गलत काम नहीं किए। दोनों की सर्विस भी पक्की है तो हम क्यों बाधक बनें ?

गोपाल मिश्र जी ने हँसते हुए कहा ठीक है। हमें पान खाने से मतलब रखनी चाहिए। बिना इलायची लौंग के पान खाने का कोई स्वाद ही नहीं रहता है। मिश्र जी ने मुस्कुराते हुए कहा इलायची की शादी में लौंग दीवाना।

फर्म–IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा –19 डी के अन्तर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (नियम 8) :–
1. **प्रकाश का स्थान – भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड, गरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर–812001 (बिहार)**
2. **प्रकाशन की अवधि – त्रैमासिक**
3. **मुद्रक का नाम – बिरजू कुमार , सलारपुरिया मार्केट, भागलपुर–812002**
4. **क्या भारत के नागरिक हैं – हाँ (यदि विदेशी नागरिक है तो अपने देश का नाम लिखें) – लागू नहीं ।**
5. **प्रकाशक का नाम – दयानन्द जायसवाल, मौर्या जुबली प्लेस, जीरो माईल, भागलपुर–813210 (बिहार)**
6. **सपादक का नाम – दयानन्द जायसवाल, मौर्या जुबली प्लेस, जीरो माईल, भागलपुर–813210 (बिहार)**
7. **क्या भारत के नागरिक हैं – हाँ (यदि विदेशी नागरिक है तो अपने देश का नाम लिखें) – लागू नहीं ।**
8. **उन व्यक्तियों के नाम/पता जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में है/पता सहित–लागू नहीं।**

प्राप्त आदेश सख्या – 1274481, दिनांक 03/07/2015, भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

दयानन्द जायसवाल

चिंतन

भवानी प्रसाद मिश्र के पत्रों में
जीवन–सौन्दर्य एक अनुशीलन

डॉ० अवधेश चन्सौलिया
दीनदयालनगर, ग्वालियर (म० प्र०)
मो०–9421587203

पत्र निजी अनुभूतियों के लिखित भंडार होते हैं। उनमें खट्टे–मीठे अनुभवों का संसार निहित होता है। वे समष्टि तक फैलकर लोक–कल्याण की भवना से ओत–प्रोत रहते हैं। इनमें व्यक्ति–विशेष के जीवन का अन्तरग पक्ष प्रकट होता है। पत्र चूँकि खुले मन से लिखे जाते हैं अतएव इनमें भावों का प्रकाशन स्पष्ट रूप से होता है। अत: किसी व्यक्ति और उसके जीवन को समझने के लिए उसके पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण सूत्र है। साहित्य, राजनीति, कला एवं दर्शन से जुड़े महान व्यक्तियों के पत्र, समाज के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। ये पत्र मानवीय चेतना से सम्पृक्त होकर लिखे जाते है। महान विभूतियों के पत्रों में सम्पूर्ण मानव जगत का चिंतन परिलक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य में पत्रों का बहुत महत्व है। साहित्यकारों के पत्रों में हिन्दी साहित्य की गतिविधियों और समस्याओं पर पर्याप्त विमर्श हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। हिन्दी पत्र साहित्य के विकास में नागरी–प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, माधुरी, चाँद, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ज्ञानोदय आदि ने विशेष योगदान किया है। 'हंस' के अक्टूबर 1948 के अंक में प्रकाश चन्द्र गुप्त ने प्रेमचन्द जी के कुछ पत्र प्रकाशित किये थे। बनारसी दास चतुर्वेदी ने सम्मेलन पत्रिका के भाग 52 संख्या 3–4 में 27 तथा भाग 53, संख्या 1–2 में 29 पत्र प्रकाशित किये थे, जिनसे वासुदेवशरण अग्रवाल के गम्भीर चिंतन–मनन तथा भावुक हृदय का परिचय प्राप्त होता है।'' इन पत्रों से निरंतर कर्मरत रहने की प्रेरणा मिलती है।

कवि भवानी प्रसाद मिश्र के पत्रों का संकलन डॉ. विजय बहादुर सिंह ने प्रकाशित कराया है। इन पत्रों द्वारा भवानी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हम सहज में ही परिचित हो जाते हैं। वे कविताओं के माध्यम से भी सहज और सरल व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं। 'गीत–फरोश' और 'बुनी हुई रस्सी' में उनकी सरलता पूरी सादगी के साथ पाठकों के समक्ष रूपायित हो जाती है। वे पत्रों में ही नहीं अपितु कविताओं में भी पाठकों को 'तुम' कहकर सम्बोधित करने लगते हैं। उनकी यह आत्मीयता पाठकों को अपना सगा बना लेती हैं, स्नेह से सम्पृक्त कर देती है। पत्रों के माध्यम से साहित्यिक विभूतियों का निजी जीवन भी उद्घाटित हो जाता है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र के पत्र भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन पत्रों में उनका निजी जीवन भी दृश्यमान हो उठता है। एक पत्र में वे विजय बहादुर सिंह को लिखते हैं– ''मैं इन दिनों अपने एक बच्चे की बीमारी में भागता–दौड़ता रहा। उसे गर्दन पर एक गाँठ थी। उसमें दर्द होने लगा। उसकी अभी जाँच हो रही है। दवा, यह मानकर शुरू कर दी गई है कि वह 'ट्यूबर कुलर' गाँठ है। इससे अधिक कुछ न निकले तो भी सस्ते छूटे, ऐसा लगेगा।'' आर्थिक कमजोरी, पारिवारिक परेशानियाँ, दिल की बीमारी, मित्रों की चिंता सदैव उन्हे घेरे रही। काव्य–संकलनों को जी.पी. एफ. के रूपयों से छपवाते रहे। मित्रों को, पुस्तकालयों में उन्हें स्वयं के खर्च पर भेजते रहे। आर्थिक तंगी की पीड़ा भी उन्होंने अपने पत्रों के माध्यम से जब–जब आत्मीयों के समक्ष व्यक्त की है। शिवकुमार (मलयज) को लिखे पत्रों में आर्थिक तंगी का जिक्र है। ''गत चार वर्षों में दो बार दिल के दौरे आ गए – शरीर कमजोर हो गया है। ... पिछले दौरे के बाद 'चकित है दु:ख' अभिव्यक्ति प्रकाशन, वि.वि. मार्ग, इलाहाबाद से (जहाँ से 'और अंत में' निकला) और दूसरे दौरे के बाद 'अँधेरी कविताएँ' ज्ञानपीठ से और सभी 2 अक्टूबर को गाँधी विचार से सम्बधित मेरी 5 सौ कविताओं का संग्रह मैंने स्वयं 27, नेताजी नगर से निकाल दिया।..... किताब अच्छी तैयार हुई है। खर्च बहुत हो गया है। कोई बीस हजार। अपनी पत्नी और बच्चों सबकी बीमा राशि सरंडर कर दी और कुछ कर्ज भी ले लिया। अब निकलने पर बेचने की चिंता कर रहा हूँ। यह निकल जाए तो तीन संग्रह और तैयार रखे हैं। यह गाँधी पंचशती तुम कॉलेज के पुस्तकालय और राज– नाँद गाँव के अन्य पुस्तकालयों में मँगवा सको तो उतनी सहायता तो होगी। पत्र लिखना।''

प्यार समेत
तुम्हारा
भवानी प्रसाद मिश्र

यह कितने शर्म की बात है कि हमारे देश में साहित्यकारों को स्वयं के रूपयों से अपने ग्रंथ प्रकाशित करने पड़ते हैं। फिर उन्हें बेचने के लिए दर–दर भटकना पड़ता है। बीमारी का इलाज भी स्वयं कराना पड़ता है। जबकि साहित्यकार, कलाकार देश की धरोहर होते हैं। उन्हें नेताओं से मिलने के लिए ऐडी–चोटी का जोर लगाना पड़ता है। जबकि नेताओं का यह दायित्व बनता है कि वे स्वयं निवास पर मिलें। उनकी कुशलक्षेम पूछे, आर्थिक सहायता प्रदान करें और ग्रंथ छपवायें।

मामा जी को लिखे पत्र में मिश्र जी लिखते हैं–'' लगभग 1 महीने से बीमार हूँ..... इस बीच मुख्य मंत्री यहाँ आये। बीमार हूँ ... मगर मैंने मिलने का समय नहीं माँगा।'' साहित्यकार अपनों से अधिक देश की और समाज की चिंता करता है। इसी भाव को समेटे मलयज जी को लिखा यह पत्र उल्लेखनीय है– ''मूलत: कहो या क्रमश: कहो हम एक अनुत्तरदायी जातीयता धारण करते जा रहे हैं। संस्कृति विहीन, केवल आराम से सुख – सुविधा कीर्ति आदि जुटा लेना हमें पर्याप्त से अधिक जीवन का लक्ष्य लगता है। कई बार जी दु:खी हो जाता है– मगर क्या करें, अपनी धरती, अपने लोग, अपने मित्र और आत्मीय यह मानसिकता बदलें तो कैसे – समझ में नहीं आता। तुम्हारे साथ जो हुआ सो करने वालों ने एक 'स्व–भाव' में किया है। ''स्वभावो मूहिनी वर्तते, निग्रहं किं करिश्यति''। बड़े धैर्य से जी तोड़ काम करते रहने वालों की टोलियां चाहिए जगह–जगह। तिल–तिल सड़े देश को तिल–तिल ही बदलना पड़ेगा। लाखों की संख्या में प्रेम से भरे मन इसे करेंगे। क्रोध से सतह बदल सकती है– भीतर गहरे में पड़े सड़े तत्वों को जैसे ही मौका मिलता है भर आते हैं। कम ज्यादा सारी दुनिया की ..... मगर अब जो अर्ध विकसित है, सो तो एकदम कहीं के नहीं रहे।'' डॉ. विजय बहादुर को लिखे पत्र में उनका कहना है– ''हमें अर्थोपार्जन की स्पर्धा में नहीं पड़ना है। थोड़ी आर्थिक तंगी आदमी को आदमी बनाये रखने में मदद करती है। दारिद्रय और सम्पन्नता मनुष्य को खा लेते हैं। इन दोनों से बचना–बचाना

विचारवानों का सपना रहा है। हमारे सार्वजनिक प्रयत्न भी इसी दिशा में होने चाहिए।'' इसी पत्र में आगे वे कहते हैं– ''तुम्हारे लेखक– संघ के निमंत्रण के बारे में मेरी स्वीकृति है। मगर यह जनवादी शब्द एक विशिष्ट विचारधारा से जुड़ गया है। जो दिमाग और दिल को गिरवी रखकर नहीं चल सकता वह किसी भी बाद से अपने को पक्के तौर पर कैसे जोड़े। रूस, चीन, चैकेर लोवाकिया, पोलैण्ड आदि सब जगह कल तक के जनवादी दूसरा दिन निकलने तक देश निकाले या इससे भी ज्यादा के लायक तय कर दिये जाते है। फिर हमारे देश का जनवादित्व कुछ सीखना नहीं चाहता।'' भवानी जी के अन्य पत्रों से भी यह ज्ञात होता है कि वे किसी बाद से बँधे हुए नहीं थे। उनका बाद सिर्फ मानवतावादी था। वे लोककल्याण में विश्वास करते थे। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' उनका ध्येय वाक्य था।

एक अन्य पत्र में विजय बहादुर को बताते हैं कि ''अहिंसा तर्क और परिस्थिति सिद्ध जितनी आज है, उतनी कभी नहीं थी। सो बात गले उतरने जैसी ही नहीं आत्मसात हो जाने जैसी है और संसार घटता है तो बढ़ता भी है। हम राम–कृष्ण की संस्कृति में क्या कुछ जोड़–घटा नहीं सकते। वे अपने–जमाने से आगे गए और नहीं भी गए हम तो अब उनके कंधों पर खड़े होकर आगे–पीछे देखकर बेहतर बातें सोच और कर सकते हैं।'' इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि वे दकियानूसी, रूढ़ और परम्परावादी नहीं हैं। वे युगीनधारा के गलत प्रवाह में भी बहने वाले व्यक्ति नहीं है। अपितु तर्क–वितर्क और विमर्श द्वारा मानवजाति के उन्नयन में जो तत्व सहायक हों, उन पर चलने वाले हैं।

वे कवि, समाज सुधारक, श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और समर्पित राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी थे। विजय बहादुर को लिखे एक लम्बे पत्र में वे खुलासा करते हैं कि ''राजनीतिज्ञों में भी जो मित्र हैं वे भी साहित्य–मर्मज्ञ होने के नाते सम्पर्क में आये। मैं राजनीति के क्षेत्र में अँग्रेज सरकार से लड़ाई के दिनों तक ही रहा। स्वतंत्रता पाने की हद तक हाथ बँटाना मेरी विवशता थी। उसके बाद राजनीतिज्ञों पर निगाह जरूर रखता रहा। और उनके काम मुझे तकलीफ देते रहे, उन्हें गलत कामों से विरत भी नहीं कर पाया। अनेक तो इनमें से मित्र ही थे।''

उन्होंने गाँधीवादी विचार धारा का एक स्कूल चलाया और 1942 से 1945 तक जेल में रहे। जेल से छूटने पर 4–5 वर्षों तक महिलाश्रम वर्धा में शिक्षक रहे। तीन साल हैदराबाद में व्यतीत किये। तत्पश्चात बम्बई में फिल्मों के संवाद भी लिखे। दिल्ली से 'सम्पूर्ण गाँधी वाड्मय' में चले गये। उन्होंने लिखा है कि ''सन् 33 तक मिल का कपड़ा पहनता था। उसके बाद खादी पहनने लगा। मिश्र जी सदैव खरा बोलते थे। इन्दिरा गाँधी द्वारा लगाया गया आपात काल उन्हें अच्छा नहीं लगा। जबकि विनोबा जी ने इसे 'अनुशासन पर्व' की संज्ञा से विभूषित किया। इस पर वे बहुत व्यथित हुए और विजय बहादुर से बोले – मैंने विनोबा को लिखा है जिस तरह अग्नि ईंधन को जलाकर स्वयं भी बुझ जाता है, उसी तरह आप भी सर्वोदय को उत्पन्न कर स्वयं अस्त हो चुके हैं। आपके दु:शासन को 'अनुशासन पर्व' की संज्ञा देकर हम सबका अपमान किया है। उनकी बेबाकी का एक और उदाहरण यह है कि आपातकाल के समय उनको दूसरी बार पेसमेकर लगवाना था। मंत्री विद्याचरण शुक्ल जी आये और बोले मैं पेसमेकर लगवा दूँ। इस पर मिश्र जी ने कहा– ''मैं उसे सरकारी खर्चे पर नहीं लगवाऊँगा। एक तो यूँ ही सरकार के खिलाफ हूँ। पेसमेकर लगवा लूँ तो आप कहेंगे, तुम्हारी छाती में हमारा पेसमेकर लगा है, फिर भी खिलाफ बोल रहे हो। विद्याचरण चुपचाप चले गए।'' इसके बाद टाइम्स ऑफ इन्डिया और ज्ञानपीठ के मालिक अशोक जैन के बिना ब्याज 18 हजार रूपये स्वीकार कर उन्होंने पेसमेकर लगवाया। और ''तीन हजार करके हर महिने उन्हें लौटा दिया।'' शिवकुमार (मलयज) जी को उन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया। 22.03.60 के पत्र में वे मलयज से कहते हैं। ''आपका पत्र मिला। मुझे उस दिन आपकी कविताएँ सुनकर सचमुच बड़ी खुशी हुई थी। ... कृपया अपनी 3–4 कविताएँ 'कृति' में भेज दें और श्रीकांत वर्मा से कहें कि ये कविताएँ भवानीप्रसाद ने सुनकर पसंद की थीं और कहा था कि 'कृति' में भेजना ठीक होगा।'' दूसरे पत्र में वे मलयज को 'कल्पना' 'ज्ञानोदय' और 'आजकल' में भी कविताएँ प्रकाशनार्थ भेजने की राय देते हैं। एक अन्य पत्र में वे मलयज को और अच्छी रचनाएँ लिखने को प्रेरित करते हैं।

वे समाजवादी विचारधारा के पोषक थे। विजय बहादुर के संग बातचीत में उनका मत ध्यातव्य है– जहाँ तक मनुष्य की बराबरी वाले सपने की बात है, हम भी चाहते हैं सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो हम भी चाहते है कि वह किसान और मजदूर वर्ग के हाथ में आए।'' उनका विचार है कि कवि को प्रगतिशील होना चाहिए न कि कठमुल्ला। समयानुसार बदलाव बहुत जरूरी हैं। उनके पत्रों में व्यावहारिक बातों के साथ–साथ चिंतन परकता भी है। संवेदना, करूणा, दया, भावुकता और भ्रातृत्व भावना से उनके पत्र सराबोर हैं। स्वाभिमान की मर्यादा से ओत–प्रोत उनके पत्र लोक चिंताको समर्पित हैं। उनके पत्रों में उनकी सम्पूर्ण जीवन पद्धतियाँ दृष्टिगत होने लगती हैं और उनके व्यक्तित्व के उनके रंग हमें प्रभावित किये बिना नहीं रहते। इन पत्रों में कवि का उदात्तभाव, पूरी विनम्रता और शीलता के साथ प्रदीप्त हो उठता है। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि लोग भ्रष्टाचार और शोषण से मुक्त हों। गाँधीवादी कहने के आकांक्षी हो गए थे। उनके ही शब्दों में– ''अब तो लोहिया की तरह खुद को एक– दूसरे किस्म का गाँधीवादी कहना चाहता हूँ। वे अपने को कुजात गाँधीवादी कहा करते थे।'' वे अपने को सीमित दायरे में नहीं रखना चाहते थे। उनका दायरा समय और परिस्थितियों के बावजूद लोक मंगल पर निर्भर था। उनका जीवन दर्शन मानवता से लबालब भरा था। उनका साहित्य मनुष्य केन्द्रित था। सत्यं, शिवं, सुंदरम की भावना से वे आप्लावित थे। इन भावनाओं को उनके द्वारा लिखे गए पत्र बखूबी पुष्ट करते हैं। आज के इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल युग में समाज को दिशा देने वाला पत्र साहित्य लगभग विलोपित ही हो गया है। यह गहरी चिन्ता का विषय है।

1. संदर्भ– सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 733 मयूर पेपर वैक्स, नोएडा संस्करण 1995।

2. सं. विजय बहादुर सिंह,कवि भवानी प्रसाद मिश्र के पत्र पृ.52, रंग प्रकाशन, राजबाड़ा इन्दौर, संस्करण 2014।

3. पृ.43–44,पृ.132,पृ.108,पृ.124,पृ.124

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303